



सरल  
जैनधर्म-प्रवेशिका  
[ चौथा-भाग ]

लेखक —

मोहनलाल जैन, काव्यतीर्थ,  
वरायठा ( मागर ) सी० पी०

प्रकाशक —

व्यवस्थापक, सरल प्रज्ञा पुस्तकमाला  
मु० लुहरा, पो० मडावरा,  
जिला—मौंसी, यू० पी०

तृतीय संस्करण } अनन्तचतुदशी { मूल्य ॥—)  
२००० } वीर नि० सं० २४७३ { नी आना

## विषयानुक्रमणिका

१—स्वाप	३
—देवशास्त्रगुरुपूजा	५
३—शान्तिपाठभाषा	१०
४—विसर्जनभाषा	११
५—इशप्राथना	१२
६—पूजा या पूजन	१३
७—पंचपरमष्ठी मूलगुण	१७
८—सप्तव्यसन	३४
९—जुआ की प्रधानता	८
१०—अष्टमूलगुण	४०
११—अभक्ष्यों का वर्णन	४३
१२—भावक के धन	४७
१३—एकादशप्रतिमा	५४
१४—तत्त्व वा पदार्थ	६३
१५—बाइसपरापठ	७३
१६—ऋतों के उत्तरभेद	७७
१७—अन्तरप्रदर्शन	९७

### आभार प्रदर्शन—

इस पुस्तक में जिन विद्वानों और फ़ारियों के लेखों का ज़ाव्या का समग्र किया गया है उनके हम अतिशय आभारी हैं।

इस पुस्तक के सम्पादन का प्रकाशन के हेतु जिन विद्वानों ने सहयोग, प्रोत्साहन और साधुवाद दिया है, वही का कृपा से यह साथ आज अपनी तृतीयावृत्ति में प्रकाश में आ रहा है। इसकी आवश्यकता, सरलता और सुन्दरता का परिज्ञान पाठकगण स्वयं करेंगे। यह पुस्तक भा० दि० जैन परीक्षालय सोलापुर की परीक्षा के फ़ौज में रखी जा चुकी है। छात्रों को अब इसी में प्रवेश फार्म भरना चाहिये।



# सरल जैनधर्म-प्रवांशकौ

चौथा-भाग

पाठ पहला

स्थाप

आ जय जय जय, नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु । णमो  
अरिहताण, णमा सिद्धाण, णमो आश्मियाण, णमो उरुक्का-  
याण णमो लोए सवसाहण । ओं अनादिमूलमत्रेभ्यो नम  
(पुष्पावलिं क्षिपेत् ) यह पठ कर बाल में पुष्प छोड़ना चाहिये ।

चत्तारि मगल-अरिहता मगल, सिद्धा मंगल, माहू मगल,  
केवलिपण्णत्तो, धम्मो मगल । चत्तारि लोगुत्तमा-अरिहता लोगु-  
त्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, माहू लागुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो  
लोगुत्तमो । चत्तारि मरण पञ्चज्जामि-अरिहते मरण पञ्चज्जामि,  
सिद्धे सरण पञ्चज्जामि, साहू मरणं पञ्चज्जामि, केवलिपण्णत्त  
धम्म सरण पञ्चज्जामि । आ नमोऽहते दयाहा (पुष्पावलिं क्षिपेत् ।)

अपवित्र परित्रो वा, सुस्थितो दु स्थितोऽपि वा । ध्याये  
त्पचनमस्कार, सर्वपापे प्रमुच्यते ॥१॥ अपवित्र परित्रा वा, सर्वा  
वस्था गतोऽपि वा । य स्मरेत्परमात्मान, स बाह्याभ्यन्तर शुधि ॥२॥  
अपराजितमत्राऽय, सर्वविघ्नविनाशने । मगलेषु च सर्वेषु, प्रथम

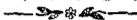
मंगलं मत ॥३॥ एसो पंच णमोयारो, सव्वपावप्पणासणो । मंग  
लाण च सव्वेसिं पढमं होइ मंगल ॥४॥ अहमित्यत्तर भद्र, वाचकं  
परमेष्ठिन । सिद्धचक्रस्य सद्बीजं, सर्वत प्रणमाम्यहम् ॥५॥ कमा  
ष्टर्वाविनिर्मुक्त, मोक्षलक्ष्मीनिकेतनम् । सम्यक्त्वादिगुणोपेत, सिद्ध-  
चक्रं नमाम्यहम् ॥६॥ उदञ्चदनतदुलपुष्पम्, चरमुदीपसुधूप  
फलाघर्षे । धवलमंगलगानर बाकुले जिनगृहे जिननाम न्यह यजे ॥

आ ह्रीं भगवज्जिनसहस्रनामधेयेभ्य अघ निर्त्रपामीति स्वाहा

श्रीमज्जिनेन्द्रमभिधाय जगत्प्रवेश, स्याद्वाचनायकमनन्तच-  
तुम्प्यार्हम् । श्रीमूलसप्तमुद्रया सुवृत्तैर्हृते तु चैने द्रयज्ञविधिरेष मया  
भ्यधायि ॥१॥ स्वस्ति त्रिलोकगुरवे जिनपुङ्गवाय, स्वस्ति स्वभावा  
महिमोदयसुस्थिताय । स्वस्ति प्रकाशसहजोर्जितदृढ मयाय, स्वस्ति  
प्रसन्नललिताद्भुतवैभवाय ॥२॥ स्वस्त्युच्छलद्विमलबोधमुधाप्लवाय,  
स्वस्ति स्वभावपरभावत्रिभासकाय । स्वस्ति त्रिलोत्रिनतैकचिदुद्  
गमाय, स्वस्ति त्रिकालसरुलायतविस्तृताय ॥३॥ द्रव्यस्य शुद्धिमधि  
गम्य यथानुरूप, भावस्य शुद्धिमधिनामधिगतुकाम ॥ आलषनानि  
वित्रिधा-यथलब्ध यत्नान्, भूतार्थयज्ञपुरूपस्य करोमि यज्ञम् ॥४॥  
अर्हत्पुराणपुरुषोत्तमपावनानि, वस्तूनि नूनमलिलान्ययमेक एव ।  
अस्मिञ्चलद्विमलकेवलबोधघटौ, पुण्य समप्रमहमेतमना जुहोमि ॥

श्री वृषभो न स्वस्ति, स्वस्ति श्री अजित । श्री सभव  
स्वस्ति, स्वस्ति श्री अभिनन्दन । श्री सुमित स्वस्ति, स्वस्ति श्री  
पद्मप्रभ । श्रीसुपार्ष्य स्वस्ति, स्वस्ति श्री चन्द्रप्रभ । श्री पुष्पदत्त  
स्वस्ति, स्वस्ति श्री शीतल । श्री श्रेया ( स्वस्ति, स्वस्ति श्री वामुपूज्य )  
श्री त्रिमल स्वस्ति, स्वस्ति श्री अनन्त । श्री धम्म स्वस्ति, स्वस्ति  
श्री शाति । श्री कुञ्जु स्वस्ति, स्वस्ति श्री अरनाथ । श्री मज्जि  
स्वस्ति, स्वस्ति श्री मुनिसुप्रत । श्री नमि स्वस्ति, स्वस्ति श्री नेमि-  
नाथ । श्री पारम स्वस्ति, स्वस्ति श्री वर्धमान ।

# ❀ श्री देवशास्त्रगुरुपूजा ❀



स्थारना

प्रथम देव अरिहत सुश्रुत सिद्धातजी ।

गुरु निर्ग्रथ मङ्गल मृकतिपुर पयनी ॥

तीन रतन जगमाहि सो ये मवि भ्याह्ये ।

तिन की भक्ति-प्रसाद परम पद पाह्ये ॥

पूजो पद अरिहत के, पूजो गुरुपद मार ।

पूजो देवी सरस्वती, नितप्रति अष्ट प्रकार ॥

ॐ ह्रीं त्रेशशास्त्रगुरुममूह । अत्र अवतर अवतर संबोपट्,  
इति आदानम् । ॐ ह्रीं त्रेशशास्त्रगुरुममूह । अत्र निष्ठ तिष्ठ ठ ठ  
इति स्थापनम् । ॐ ह्रीं त्रेशशास्त्रगुरुममूह । अत्र मम सन्निहितो  
भय भय वपट्, नति सन्नि गीकरण । पगिपुष्पाजलि चिपेत् ।

सुरपति उरगनरनाथ तिनकर बन्दनीक सुपदप्रभा ।

अतिशोमनीक सुवर्ण उज्ज्वल देव छवि मोहित सभा ॥

वर नीर क्षीर ममूद घट भर अग्र तसु बहुविधिनचू ।

अरिहत श्रुतमिद्धात गुरु निर्ग्रथ नित पूजा रचू ॥१॥

मलिन वस्तु हर लेत मव जल स्वभाव मललीन ।

जामो पूजो परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥१॥

ॐ ह्रीं त्रेशशास्त्रगुरुभ्य जन्मजरामृत्युविनाशाय नमः ।

जे त्रिनग उदर महार प्राणी तपत अति दुद्धर खरे ।

तिन अहितहरण शुभ वचन जिनके परम शीलता भरे ॥

तसु भ्रमर लोभित घ्राण पावन सरम चदन घसि मचू ।  
 अरिहत श्रुत सिद्धांत गुरु निर्ग्रंथ नित पूजा रचू ॥२॥  
 च दन शीतलता करे, तपतवस्तु परधीन ।  
 जासों पूजों परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥२॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्य मसाराणाविभाशाय चत्तम ॥

यह भव ममुद्र अपार तारण के निमित्त सुगिधि टही ।  
 अति दृढ परम पावन जधारथ भक्ति बगनों का मही ॥  
 उज्ज्वल अलङ्कित शालि तदुल पुजघर त्रयगुण जचूं ।  
 अरिहत श्रुत सिद्धांत गुरु निर्ग्रंथ नित पूजा रचू ॥३॥  
 तदुल शालि सुगंध अति, परम अलङ्कित वीन ।  
 जासों पूजों परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥३॥

ॐ ह्रा देवशास्त्रगुरुभ्य अक्षयपदप्रदानाय अक्षतम् ॥

जे विनयवत सुमव्य उा अम्बुज प्रकाशन भान हैं ।  
 जे एक मृत्त चारित्र भाषित त्रिपग भाँहि प्रधान हैं ॥  
 लहि कु द कमलादिक पट्टप भत्र भत्र कुवेदन सों बचू ।  
 अरिहत श्रुत सिद्धांत गुरु निर्ग्रंथ नित पूजा रचू ॥४॥  
 त्रिविध भाँति परिमल सुमन, भ्रमर जाम जावीन ।  
 जामों पूजों परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥४॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्य नामवाणविनाशाय पुष्पम् ॥

अतिममल मद कदर्प जाको छधा उरग अमान है ।  
 दु यह भयानक तासु नाशनकों सुगरुड़ समान है ॥

उत्तर छहों रमयुक्त नित नैवेद्य कर घृत में पचू ।  
अरिहत श्रुत सिद्धान्त गुरु निर्ग्रथ नित पूजा रचू ॥५॥  
नाना विधि संपुक्तगम, व्यञ्जन मरम नवीन ।

चामों पूजों परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥५॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्य जुगारागविनाशाय नैवेद्यम् ।

जे त्रिजग उद्यम नाश कीने मोह निपिर महाबली ।  
तिह कर्मघाती ज्ञानदीप प्रकाश जोति प्रभावली ॥  
इह भाति दीप प्रचाल कञ्चन के सुभाजन में रखू ।  
अरिहत श्रुत सिद्धान्त गुरु निर्ग्रथ नित पूजा रचू ॥६॥  
स्वपर प्रकाशक जोति अति, दीपक तमकर हीन ।

जामों तूनों परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥६॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्य मोहावकारविनाशाय दीपम् ।

जो कर्म ईंधन दहन अग्नि समूह अति उद्धत लसे ।  
वग धूप ताम सुगंधता कर मकल परिमलता हैसे ॥  
इह भाति धूप चढ़ाय नित भवज्वलनमाहिं नहीं पचू ।  
अरिहत श्रुत सिद्धान्त गुरु निर्ग्रथ नित पूजा रचू ॥७॥  
अग्नि माहिं परिमल दहन, चन्दनादि गुण लीन ।

जामों पूजों परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥७॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्य अष्टम विनाशाय धूमम् ।

लोचन सुरमना घ्राण उर उत्पाह के कारीर हैं ।  
मोषै न उपमा जाय वरणी मकल फल गुणमार हैं ॥  
सो फल चढ़ावत अर्थ पूजन परम अमृत रम मचू ।  
अरिहत श्रुत सिद्धान्त गुरु निर्ग्रथ नित पूजा रचू ॥८॥



जे प्रधान फल फल विपै, पचकरण रस लीन ।

जासों पूजों परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥८॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्य मोनफलप्राप्तये फलम् ।

जल परम उज्ज्वल गन्ध अक्षत पुष्प चरु दीपरु धरुं ।

वग धूप निर्मल फल विविध बहु जन्म के पातक हरुं ॥

इहि भांति सुकृत अपार ताण करत शिव पकति मचू ।

अरिहत श्रुत सिद्धान्त गुरु निर्ग्रन्थ नित पूजा रचू ॥९॥

वसु विध अर्घ सँजोय कर, अनि उछाह मन कीन ।

जासों पूजों परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥९॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्य अनर्घप्राप्तये महाध्यम् ।

### जयमाला

देवशास्त्र गुरु रतन शुभ, तीन रतन करतार ।

मिन्न मिन्न कू आरती, अल्प सुगुण विस्तार ॥

जे करम \* तिरेमठ प्रकृति नाश,

जीते अष्टादश दोष राश ।

जे परम सुगुण हैं अनन्त घीर,

कहवत के छयालिम गुण गँभीर ॥१॥

शुभ ममवमरण शोभा अपार,

शत इन्द्र नमत कर शीश धार ।

\*यातिया कर्मों की ४७ तथा भरकतियभगति, तदानुपूर्वी  
२, विकल २, आयु ३, श्योन, आतप, पन्द्रिय साधारण,  
सूदन और स्थावर ॥ ६३ ॥

देवाधिदेव अरिहत देव,  
 वन्दो मनवचतन कर सुसेव ॥२॥  
 जिन की श्रुति है ओंकाररूप,  
 निरअक्षरमय महिमा अनूप ॥  
 दश अष्ट महाभाषा ममेत,  
 लघु-भाषा सात शतक सुचेत ॥३॥  
 सो स्याद्वादमय मत्तमङ्ग,  
 गणधर शूये वारह सुभङ्ग ॥  
 रवि शशि न हरेँ सो तम हराय,  
 सो शास्त्र नमूँ बहु प्रीति लाय ॥४॥  
 गुरु आचारज उवज्ञाय साध,  
 तन नगन स्तनत्रयनिधि अगाध ॥  
 समार दह वैराग धार,  
 निग्वाठ तर्प शिवपद निहार ॥५॥  
 गुण छत्ति पञ्चिम आठवीम,  
 भवतारण तगण जिहाज ईश ।  
 गुरु की महिमा वरणी न जाय,  
 गुरुनाम जपों मनप्रचनकाय ॥६॥

कीजे शक्ति प्रमाण, शक्ति बिना श्रद्धा धरो ।

‘धानव’ श्रद्धावान्, अजर अमर पद भोगवे ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः अनघपदप्राप्तये मन्तार्यम् ।

## शान्तिपाठ ( भाषा—हिन्दी )



शान्तिनाथ ध्रुव शशिउतनहारी, श्रीलगुणाग्रतस्यमभागी ।  
 लखन एकसौ आठ विराजें, निरखत नयन कमल दल लाजें ॥  
 पचम चक्रवर्तिपद धारी, मोलम तीरंकर सुखकारी ।  
 इन्द्रनरेन्द्रपूज्य जिननायक, नमो शान्तिहितशान्तिविधायक ॥  
 दिव्यत्रिप पद्मन क्ली वरमा, दुन्दुभि आमन राणीमरमा ।  
 छत्र चमर भामण्डल भारी, ये तुव प्रातिहार्य मनहारी ॥  
 शान्ति जिनेश शान्ति सुखदाई, जगतपूज्य पूनों सिर नाई ।  
 परमशान्ति दीजे हम सब को, पढ़ जिहँ, पृति चारसध की ॥

पूजें जिहँ सुकृद्धार किगीट लाके,

इन्द्रादिदम, अरु पूज्य पदात्र जाके ।

सो शान्तिनाथ वरवृत्तगत्प्रदीप,

मेरे लिये कहिँ शान्ति मदा अनूप ॥

सपूजकों को प्रतिपालकों को, यतीनकों वा यातिनायकों को ।  
 राजाप्रजाराष्ट्रमुदश काले, कीजे सुखी हजिन शान्तिको द ॥  
 हौं मारी प्रना को, सुख बलपुत हो, धर्मधारी नरेशा,  
 होवे वर्षा समै पै, तिलमर न रहै, व्याधियों का अँदशा ।  
 होवे चोरी न जारी, सुपमय वरनें, हो न दुष्काल भारी,  
 सारे ही देश भारें, जिनवरपृथको, जो मदासौरुपकारी ॥

घातिकर्म जिन नाश कर, पायो करलराज ।

शान्ति करै त जगत मं, वृषमादिक जिनराज ॥

शास्त्रों का हो, पठन सुखदा, लाभ सत्सङ्गती का,  
 मद्गृहों का, सुनम उदके, दोष ढाकू ममी का ।  
 बोलें प्यार, वचन दित के, आपका रूप ध्याऊँ,  
 तौलो सेऊँ, चरन जिन के, मोक्ष नौलों न पाऊँ ॥

तव पद मेरे हिय मे, मम हिय तेर पुनीत चरणों में ।  
 तमलों लीन ग्हे प्रभु, जगलों प्राप्ती न मुक्तिपद की हो ॥  
 अक्षरपद मात्रा से, दूषित जो कहु रुहा गया मुझ से ।  
 क्षमा करो प्रभु सो मय, करुणा करि पुनि छुड़ाव भवदुखसे ॥  
 हे जगबन्धु जिनेश्वर, पाऊँ तव चरण शरण बलिहारी ।  
 मरण समाधि सुदुर्लभ, कर्मों का क्षय मुबोध सुखकारी ॥

### विसर्जन ( भाषा-हिन्दी )



बिन जाने वा जान के, रही तूट जो कोष ।  
 तव प्रसादते परमगुरु, सो सर पुरन होय ॥१॥  
 पूजन विधि जानूँ नहीं, नहि जानूँ आह्वान ।  
 और विमर्जन हूँ नहीं, क्षमा करो भगवान ॥२॥  
 मन्त्रहीन धनहीन हूँ, क्रियाहीन निनदेव ।  
 क्षमा करहु राखहु मुझे, देहु चरण की सेव ॥३॥  
 जाये जो जो दवगण, पूजे भक्ति प्रमान ।  
 ते अब जावहु कृपा कर, अपने अपने यान ॥४॥

[ हारमोनियम पर कई व्यक्तियों द्वारा मिलकर गाने योग्य ]

## ❀ ईश-प्रार्थना ❀



फलिमलगवन भविष्यलिरजन, भक्त जनों के हैं भयभजन ।  
 तुमहिं निरजन देव जगत् में जयवन्तो जिनदेव ॥ १ ॥  
 आप अनन्त ज्ञान के स्वामी, वोतराग ह्ययालिम गुणगामी ।  
 हित उपदेशी देव, जगत् में जयवन्तो जिनदेव ॥ २ ॥  
 परमपूज्य तुम को लख कर के, सय शते द्रुमुर पशु अरु नर के ।  
 करते हैं चिनसेव जगत् में जयवन्तो जिनदेव ॥ ३ ॥  
 मुनिजन तुमको ध्येय बनाकर, प्रभो आपका रम्य ध्यान घर ।  
 करते नितप्रति मेव, जगत् में जयवन्तो जिनदेव ॥ ४ ॥  
 सरल सुरासर चन्दनीय हो, फर्म बलकृ निकन्दनीय हो ।  
 हे त्रिभुवन के देव, जगत् में जयवन्तो जिनदेव ॥ ५ ॥  
 जो मानव तुमका ध्याता है, वह भी दुःखरहित होता है ।  
 अन्तर अमर स्वयमेव, जगत् में जयवन्तो जिनदेव ॥ ६ ॥  
 मेरे डर में बसो मचदा, जिमसे जग की भाषणापदा ।  
 नशे नाथ स्वयमेव जगत् में जयवन्तो जिनदेव ॥ ७ ॥  
 नाथ तिहारें नित गुण गाऊँ तुम्हें हृदय का हार बनाऊँ ।  
 तज कर और कुदेव, जगत् में जयवन्तो जिनदेव ॥ ८ ॥  
 आव निरजन नाथ पधारो मन मन में निव-योति पसारो ।  
 दो अब ज्ञान अछेव जगत् में जयवन्तो जिनदेव ॥ ९ ॥  
 हितकारी है मार्ग तुम्हारा, भव्यजनों को परम पियारा ।  
 नाशक कर्म कुटेव, जगत् में जयवन्तो जिनदेव ॥ १० ॥



## ❀ पूजा या पूजन ❀



अरिहन्त, सिद्ध, त्रिगम्बर साधु, चिनयाणो और जिन तीर्थ स्थान आदि की स्तुति करना या उन्हें अष्टद्रव्य चढाना पूजा कहलाती है। यह पूजन दो प्रकार की होती है। १—द्रव्यपूजन और २—भावपूजन।

उपर्युक्त अरिहन्त आदि को उनका गुणगान करते हुए जल, घन्दन आदि द्रव्य भेंट चढाना द्रव्यपूजा कहलाती है। और अष्टद्रव्य बिना शुद्ध मन से केवल गुणगान करना भावपूजन कहलाती है।

आरम्भ और परिग्रह रहित, २८ मूलगुणा के धारी दि० जैन साधु भावपूजन ही करते हैं, वे द्रव्यपूजन नहीं करते। क्योंकि वे क्रिया प्रकार का परिग्रह नहीं रखते और आरम्भ नहीं करते। य इतने सावधान होते हैं, कि बाह्य अवलम्बन के बिना ही केवल अपने शुद्ध भावों में अरिहन्त, सिद्ध या शुद्ध आ मा का ध्यान कर लेते हैं।

गृहस्था का वित्त सामारिक काया में लिंचा रहता है। इसलिये गृहस्थों के लिये द्रव्यपूजा के द्वारा ही भावपूजन का कथन है।

गृहस्थ आश्रम आरम्भ और परिग्रह सहित है। इसलिये अशुभापयोग से हट कर शुभापयोग में प्रवृत्त होने के लिये उन्हें द्रव्य से देवपूजन करना अनिवार्य या परमावश्यक है। क्योंकि अशुभापयोग से हटकर इन्द्रम शुद्धोपयोग में लगना ठीकी स्त्री है।

द्रव्यपूजा करने में यथापि छुए से जल भरना, जल को अग्नि पर प्रासुक करना और सामग्री घाना आदि आरम्भ

पड़ता है, तो भा शुभापयोग से होने वाले इस आरम्भ से पाप ता थोड़ा होता है किन्तु पुण्य उपाह होता है। इसलिये यह थोड़ा पाप द्रव्यपूजन—जनित महान् पुण्यराशि में कोई शेष पैदा नहीं कर सकता। जैसे विष व कुछ कण समुद्र में टाल दिये जाय तो वे समुद्र की अथाह जलराशि को विषमय नहीं कर सकते। अथात् जैसे समुद्र की जलराशि में वह विष छिप जाता है, वैसे ही द्रव्यपूजा के आरम्भ से होने वाला पाप भी द्रव्यपूजा से उत्पन्न पुण्यराशि में छिप जाता है। क्योंकि हचारगुणा म एक दुर्गुण छिप ही जाता है' यह नीतिप्रसिद्ध वान है।

यह पूजा इसलिये नहीं की जाती है कि हम पूज्या को प्रसन्न करें। वे तो वीनराग होते हैं—न तो हमारी प्रशंसा से राजी होकर हमें कुछ देते हैं, न हमारा द्वारा की गई निन्दा से नाराज होकर हमारा कुछ बिगाड़ हा करते हैं। उनका पूजन केवल अपने भावा की (निर्मलता) और पापों के विनाश के लिये ही किया जाता है।

यह नियम है कि—गुणों के मनन से अपने भाव गुण प्रेमो तथा अवगुण के मनन से अपने भाव दापो बन जाते हैं। हमारे भावा से ही हमारा भला या बुरा होता है। अरिहन्त आदिक परम वातराग हैं। इनकी भक्ति से हमारे भावा में शान्ति आती है। भक्तियम शान्त भावों से हमारे पाप कन्ते हैं और पुण्य का लाभ होता है। इसलिये प्रत्येक आत्महितैषा को पूजन अवश्य करना चाहिये। यह पूजन आवर के पट्कर्मों म प्रथम वराव्य है। पूजन के भावमात्र से राजगृही नगरी के मेंढक को उत्तम फल मिला था।

जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप और फल ये पूजा की अष्ट द्रव्य हैं। अब इनके मिश्रण को ही कहते हैं। ये द्रव्यें शुद्ध, उत्तम और यथाशक्ति होना चाहिये।

## अष्टद्रव्य चढ़ाने का फल या कारण—

( सागारधमामृत वा ओं ह्रीं के आगर से )

१—जल चढ़ाने से पाप या उम जरा मृत्यु का नाश, २—चन्दन चढ़ाने से शरीर में सुगन्ध की प्राप्ति या रसाराताप का नाश, ३—अक्षत चढ़ाने से अष्टशुद्धि या सपत्ति की प्राप्ति या ऋक्षय पद की प्राप्ति, ४—पुष्प चढ़ाने से मंदारमाला की प्राप्ति या कामवेदना का नाश, ५—नैवेद्य चढ़ाने से लक्ष्मीपतित्व की प्राप्ति या जुधारोग का नाश, ६—दीप चढ़ाने से सौन्दर्य की प्राप्ति या अज्ञानरूप अन्धकार का नाश, ७—धूप चढ़ाने से परममोभाग्य की प्राप्ति या अष्टकर्म का नाश, ८—फल चढ़ाने से मनोवाञ्छित या मोक्ष फल की प्राप्ति, और ९—अर्घ चढ़ाने से विशेष मान-प्रतिष्ठा या आदरणीय पद की प्राप्ति होती है। इस प्रकार अष्ट द्रव्य चढ़ाने का फल जानना चाहिये।

## विशेष—

विशेष —१—खडे होकर पूजन करने में विशेष आदर और भक्ति सूचित होती है, इसलिये पूजन खडे होकर करना विशेष महत्त्व का है। २—अष्टक के छन्दों के बाद 'ओं ह्रीं' अवश्य धोलना चाहिये। ३—अष्टद्रव्य ( जल आदि ) उक्त क्रम से ही चढ़ाना चाहिये। ४—जिसकी पूजा का जाती है जयमाला में सभी के गुणों का घण्टन होता है। ५—आह्वान, स्थापना, सत्रिधीकरण, पूजन और विसर्जन ये पाँच 'पूजा के अङ्ग' हैं, पूजा में इनका करना आवश्यक है। ६—स्नान के बाद शुद्ध वस्त्र पहिन कर, मन की चंचलता रोक कर भक्तिपूर्वक शांतभावा से पूजन करना चाहिये।



## प्रश्नावली—

१—अर्घ, जयमाला, द्रव्य पूजा, पूजा और भावपूजा से आप क्या समझते हैं ?

३—लोक में सर्वोत्तमधर्म कौन है ?

५—देवशास्त्रगुरु पूजन किसने बनाइ है ?

७—पूजन करने वाले को सत्र से पहिले और सत्र से अन्त में क्या करना चाहिये ?

९—पूजन के लिये स्निग्ध किन चीजा की जरूरत होती है ?

११—अमुक द्रव्य चढाने का छन्द पढ़ो और बतलाओ कि छन्द के बाद क्या कह कर द्रव्य चढाई जाती है ?

१३—आह्वान, पूजन, विसर्जन, शान्तिपाठ और स्थापना क्या और क्यों किये जाते हैं ?

१६—शान्ति-पाठ और विसर्जन करते समय क्या करना चाहिये ?

२—अष्टद्रव्य, उत्तमयस्तु, तोन रतन, पूजन, मङ्गल और शरण के भेद बतलाइये ?

४—तुम्हारे लिय सच्चा मङ्गल और शरण कान हैं ?

६—पूजन किस किस की जाती है ?

८—पूजन करते हुकर करना चाहिये या बैठकर ? वा क्यों ?

१०—अष्टद्रव्य का क्रम क्या है, अत्रम भी किया जा सक्त है क्या ?

१२—पूजन और अष्टद्रव्य का फल बतलाइये ?

१४—वे त्रेमठ प्रकृतियों कौन हैं जिनका नाश अरिहत करते हैं ?

१५—मच्छे गुरु, देव, शास्त्र का मक्षित वर्णन कीजिये ?

१७—जयमाल म किस बात का उल्लेख हाता है ?

१८—अमुक छन्द पूर्ण करो ?

# पाठ दूसरा

## पच परमेष्ठी के मूल गुण



### परमेष्ठी का लक्षण—

जा धार्मिक पदों में सबसे उत्तमपद के भाग होते हैं, लोक में गुणों की अपेक्षा सम से बड़े होते हैं और बड़ बड़ राजा महा राजा वा इन्द्र आदि निनको मस्तक झुकाते हैं उन्हें परमेष्ठी कहते हैं।

### परमेष्ठी के भेद—

अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु ये ५ परमेष्ठी हैं। क्योंकि इनसे बड़ा पद अन्य किसी का नहीं होता।

### अरिहन्त परमेष्ठी का लक्षण—

जिनके ज्ञानावरण, दशनावरण, मोहनीय और अन्तराय ये चार घातिया कम नष्ट हो जाते हैं, निनमें ४५ मूलगुण होते हैं अठारह दोष नहीं होते और जो घातराग, सबज्ञ तथा हितो पदशी होते हैं उन्हें अरिहन्त परमेष्ठी कहते हैं।

### अरिहन्त परमेष्ठी के मूलगुण—

चौतीसों अतिशयसहित, प्रातिहार्य पुनि आठ।

अनंतचतुष्टय गुणसहित, ये छयालीसों पाठ ॥

इस पाठ के समस्त श्लोक स्वर्गीय कविवर ५० बुधचननट्ट इष्ट्यत्तीमी से लिखे गये हैं। परमे इन्द्रादिग्रन्थे पदे तिष्ठन्तीति परमेष्ठी।

३४ अतिशय, ८ प्रातिहाय और ४ अनन्तचतुष्य ये ४ अरिहन्त के मूलगुण हैं। इनके मित्राय और भी उत्तरगुण अनन्त

अतिशया के भेद या नाम—

दश अतिशय हैं जन्म के, दश ही केवलज्ञान ।

चौदह होते देवकृत, अतिशय चौतिस जान ॥

जन्म के अतिशय १०, केवलज्ञान के अतिशय १० अ  
देवकृत अतिशय १४, इस प्रकार ३४ अतिशय होते हैं ।

अतिशय का लक्षण—सब साधारण प्राणियों में न प  
जाने वाली अद्भुत या अनोखी बात को अतिशय कहते हैं ।

जन्म के दश अतिशयों के नाम—

अतिशय रूप सुगन्ध तन, नाहिं पसेव निहार ।

प्रियहित वचन अतुल्य बल, छधिरश्चेत आकार ॥

लक्षण सहम रु आठ तन, ममचतुष्क सठान ।

वज्रवृषभ नाराचजुत, ये जनमत दश जान ॥

१—शरीर में अत्यन्त सुन्दरता, २—शरीर में अत्य  
सुगन्ध होना, ३—शरीर में पसीना न आना, ४—मलमू  
होना, ५—वचन का हित, मित और गिय होना, ६—बल  
अतुल्य होना, ७—रून सफेद होना, ८—शरीर में १००८ ल  
होना, ९—समचतुरस्रसंस्थान × हाना और १०—वज्रवृषभ  
राचसहननं हाना ये दस अतिशय (आश्चर्यजनक असाधारण  
अनोखी बातें) अरिहन्त भगवान् के जन्म से ही होते हैं ।

अतुल्य = अनुपम अर्थात् जिनकी धरामरी का काइ दूस  
नहीं। लक्षण = श्रेष्ठ, संत, कमल, स्थितिक आदि। × सु  
सुन्दर आकार, छद्माइ, घेठन और कीलों का वधमय होना।

केवलज्ञान के अतिशयों के नाम—

योजन गतइक में मुमिछ, गगनगमन वृत्तार ।  
 नहिं अदया उपमर्ग नहिं, नाहीं कबलाहार ॥  
 मय विद्या ईश्वर पनी, नाहिं बँदु नख कश ।  
 अनिमिप दृग छाया रहित, दश केवल के वेश ॥

१—भगवान अरिहन्त के चारा ओर सौ सौ योजन में मुकाल होना, २—गमन पृथ्वी से ऊपर आकाश में अंतर होना, ३—एक होने पर भी चारा ओर चार मुख दिखना, ४—अदया (हिंसा) का न होना ५—उपमर्ग न होना, ६—कबलाहार (घास घाला) आहार न लेना, ७—समस्त विश्वाश्वा का ज्ञाता होना, ८—नख और केशों का न बढ़ना, ९—नेत्रों को पलकें न भपना और १०—शरीर की छाया ( परछाई ) न पड़ना । अरिहन्त भगवान के ये १० अतिशय वैज्ञानिक होने के समय प्रगट होते हैं । इससे इन्हें केवलज्ञान के अतिशय कहते हैं ।

देवदत्त अतिशयों के नाम—

दवरचित ई चार दश, अर्धमाणघी भाष ।  
 आपम माही मित्रता, निर्मल दिग आकाश ॥  
 होत फूलफल ऋतु मत्रै, पृथ्वी काय ममान ।  
 चरण कमल तल कमल है, नभतैं जय जय वान ॥  
 मन्द सुग व पयार पुनि, गन्धोदरु की वृष्टि ।  
 भूमि विपैं कटक नहीं, हर्यमई मय सृष्टि ॥  
 धर्मचक्र आगे रहै, पुनि वसु मंगल मार ।  
 अतिशय श्रीअरिहन्त के, ये चातीस प्रकार ॥

१—भगवान् की भाषा अर्धमागधी ॐ होना, २—समस्त जीवों में परस्पर मित्रता होना, ३—दिशाआ का निमल होना ४—आकाश निर्मल होना, ५—छद्दा ऋतुओं के फलपून धातु आदिक एक ही समय फलना, ६—एक याजन तक पृथिवी दर्पण की तरह निमल होना ७—चलते समय भगवान् के चरणों के नीचे सुवर्ण कमल रचना, ८—आकाश में जय शब्द होना, ९—मन्द और सुगन्धित पवन चलना १०—सुगन्धमय जल की वृष्टि होना ११—पवनकुमार देवों द्वारा भूमि का कटक रहित होना, १२—समस्त प्राणियों का आनन्द होना, १३—भगवान् के आगे घमचक्र चलना और १४—अष्टमगल द्रव्यों का साथ रहना ये १४ देवकृत अतिशय हैं। ये देवा के द्वारा किये जाते हैं, इसलिये इन्हें देवकृत कहते हैं। ये देवकृत अतिशय भी केवलज्ञान होने पर ही होते हैं।

प्रातिहार्यों के नाम—

तह अशोक के निहट मे, सिंहासन उचिदार ।  
तीन छत्र सिंग पर लस, भाषण्डल पिछार ॥  
दिव्यध्वनि मुखतै गिरै, पुष्पशृष्टि मुख होय ।  
ढोरै चौपठ चमर जस बाजै द दमि जोय ॥

ॐ सात प्रकार की नाट्य भाषा में एक मागधी जाति है। कहा भी है कि—मागध्यावृत्तिना प्राच्या, सारसै यधमागधी वाहीनी दाक्षिणात्या च भाषा सप्त प्रसीतिता ॥

† भागी, चमर, दर्पण, स्वस्तिका ( ठौना ), कलश, पद्मध्वजा और छत्र ये अष्टमगल द्रव्य हैं।

सिंहासन व छत्र आदि प्रथम ता इन्द्रादिक देवों द्वारा रक्षित होते हैं दूसरे उनमें मोक्ष का संवथा अभाव होता है इसलिये इनके होने पर भी अरिहन्त अपरिगृहीत हैं।

१—भगवान के पास में अशोक वृक्ष ना होना, २—  
रत्नमय x सिंहासन, ३—भगवान के शिर पर तीन छत्रों का  
होना, ४—भगवान् की पीठ के पीछे भामरहल का होना, ५—  
दिव्यध्वनि + का होना, ६—द्वों द्वारा फूलों की वर्षा होना, ७—  
यज्ञजाति के द्वारा द्वाग घोंसठ चमरों का दुराग और ८—  
दुन्दुभि यात्रा का घनना ये आठ प्रातिहार्य है। विशेष शोभा  
की यात्रा या चारों को प्रातिहार्य कहते हैं।

अनन्तचतुष्टयों के नाम—

ज्ञान अनन्त, अनन्तसुख, दर्श अनन्त प्रमान ।

बल अनन्त अरिहन मो, इष्टदर पहिचान ॥

१—अनन्तदर्शन, २—अनन्तज्ञान, ३—अनन्तसुख और  
४—अनन्तनीर्य ये चार अनन्तचतुष्टय हैं। इन चारों से भगवान

अ जिस वृक्ष के नीचे भगवान् को केवलज्ञान होता है वही वृक्ष  
समवसरण में अशाकवृक्ष कहल ता है। एसा ही त्रैलोक्यप्रज्ञप्ति  
म कहा है कि—

जेमि तरुणामूले, ऽप्यणु केवलं शाण ।

उमहपडादिनिशाण तच्चेवात्थि अमोयरुत्तरति ॥

x भगवान् सिंहासन से ४ अंगुल अन्तराज विराचमान  
रहते हैं।

+ ताडु, कठ और ओष्ठ आदि से हिलन चलन और  
स्पर्श रहित, विना अक्षर को प्राय और अनार्य मत्र की समझ  
में आनेवाली, प्राणियों के पुण्य से विना इच्छा के प्रतिदिन  
४ ५ बार ६ ६ घड़ी निरुत्तने वाली भगवान् की वाणी दिव्य  
ध्वनि कहलाती है। वही उत्तरपुराण में कहा है कि—

मुताम्बुनेऽस्य वक्तु विहृति नभू मनाग न च ।

ताल्लोष्टाना परिम्पन्तो, निययौ भारतो मुग्वान् ॥

का दर्शन, ज्ञान, सुख और बल अनन्त अर्थात् सोमा या हृद रहित होता है, इसलिये इन्हें अनन्तचतुष्टय कहते हैं।

अठारह दोषों के नाम—

जन्म जरा तिरसा क्षुधा, विस्मय आरत खेद ।  
रोग शोक मद मोह भय, निद्रा चिन्ता स्वेद ॥  
राग द्वेष अरु मरणश्रुत, ये अष्टादश दोष ।  
नहिं होत अरिहत के, सो छवि लायक मोष ॥

१—जन्म, २—जरा (बुढ़ापा) ३—तृषा (प्यास),  
४ क्षुधा (भूख), ५—विस्मय (आश्चर्य), ६—अरति (पीडा),  
७—खेद (दुःख) ८—रोग, ९—शाक, १०—मद (गर्भ) ११—  
मोह (अज्ञान), १२—भय (डर) १३—निद्रा, १४—चिन्ता,  
१५—स्वेद (पमाना), १६—राग, १७—द्वेष और १८—मरण ये  
अठारह दोष हैं। ये आरहत परमेश्वरों के नहीं होते।

### सिद्ध परमेश्वरों का लक्षण—

अष्टधर्म और पांच शरीर रहित, लारु और अलोन के  
ज्ञाना दृष्टा ( जानने देखने वाले ), पुष्प के , अन्तिम शरीर से  
बुद्ध छोटे ) आकार के धारक और लोक के अग्रभाग में स्थित  
आत्मा को सिद्ध परमेश्वर कहते हैं। ये ससार के बन्धन से मदैव  
को मुक्त हो जाते हैं, फिर कभी लौटकर ससार में नहीं आते।

× जैसे बीज के मिलकुल जल जाने पर अकुर पैदा नहीं  
होता वैसे ही धर्मरूप बीज के जल जाने पर अर्थात् समस्त  
कर्मों का सबधा क्षय हो जाने पर ससाररूपी अकुर पैदा नहीं  
होता अर्थात् फिर जन्म मरण नहीं होता।

सिद्ध परमेष्ठाके मूलगुण वा उनके लक्षण—

समकित्त दर्शन, ज्ञान, अगुरुगुण अवगाहना ।

सूक्ष्म वीरजज्ञान, निग्राह्य गुण सिद्ध के ॥

जायिकसम्यक्त्व, अनन्तदर्शन अनन्तज्ञान, अगुरुलघुत्व, अवगाहनत्व, सूक्ष्मत्व, अनन्तत्रयी और अव्यापार व ये ८ आठ सिद्ध परमेष्ठी के मूलगुण हैं । इनके भी उत्तरगुण अनन्त हैं ।

१—यवार्थ तत्त्वा क विषय में विररीत अभिप्राय रहित ध्यान होना जायिकसम्यक्त्व कहलाता है । —लोक और अलोक के समस्त पदार्थों की मत्ता-मात्र का ग्रहण करना कवन दर्शन कहलाता है ।

३—त्रिकालपरत समस्त पदार्थों को समस्त पदार्थ का दर्पण के समान युगपत् जानने वाला ज्ञान अनन्तज्ञान कहलाता है ।

४—लाहपिएड के समान गुरुपने का अभाव तथा आक को रुड क समान लघुपने का अभाव अगुरुलघुत्व गुण कहलाता है ।

५—जैम एक दीपर के प्रकाश में अनेक दीपरों के प्रकाश का समावेश हो जाता है उसी प्रकार एक सिद्ध के क्षेत्र में अनन्त सिद्धों को अवकाश देने की शक्ति अवगाहनत्व गुण कहलाता है ।

६—सिद्धों के स्वरूप का इन्द्रिया के गोचर न होना, केवल केवलज्ञान का विषय होना सूक्ष्मत्व गुण कहलाता है । ७—

अनन्त पदार्थों के जानने में भी स्वेद न होना अनन्तत्रयी गुण कहलाता है । ८—आर दुःख का सखा अभाव होना अव्यापार रगुण कहलाता है । ये आठ सिद्ध परमेष्ठी के गुण हैं ।

सिद्धों में मोहनीयकर्म के अभाव से सम्यक्त्व, ज्ञानावरण कर्म के अभाव से अनन्तज्ञान, दर्शनावरण कर्म के अभाव से अनन्तदर्शन, अन्तरायकर्म के अभाव से अनन्तत्रयी, नामकर्म के अभाव से सूक्ष्मत्व, आपुङ्गम के अभाव से अवगाहनत्व,



गौत्रकर्म के अभाव से अगुरुलघुतर और वेदनीय के अभाव से अठ्यावाधत्व गुण प्रगट होते हैं। अर्थात् आठा कर्मों के नाश होने पर सिद्धों के ये आठ गुण प्राप्त होते हैं।

## आचार्य परमेष्ठी का लक्षण—

जो पांच आचारों का स्वयं पालन करत है तथा दूसर मुनिया से पालन कराते हैं और जो मुनियों के सघ के अधिपति होत हैं, उनको दीक्षा वा प्रायश्चित्त आदि दण्ड देते हैं उन्हें आचार्य परमेष्ठी कहते हैं आचार्य के मूलगुण ३६ होते हैं।

आचार्य परमेष्ठी के मूलगुणों के नाम—

द्वादश तप दश धर्मजुत, पालें पचाचार ।

पद् आवशि त्रयगुप्ति गुण, आचारज पद् सार ॥

१२ तप १० धर्म ५ आचार, ६ आवश्यक और ३ गुप्ति ये ३६ आचार्य के मूलगुण हैं। उत्तरगुण इनके भी अनेक हैं।

तपों के नाम का लक्षण—

अनशन उनोदन करे, व्रतसरण्या रम छोर ।

त्रिविक्त शयन आमन धरे, कायक्लेश सुठोर ॥

प्रायश्चित्त धर विनयजुत, वैद्यावृत स्वाध्याय ।

पुनि उत्तमर्ग विनारकै, धरै ध्यान मनलाप ॥

अनशन, उनोदन, व्रतपरिसम्प्यान, रसपरित्याग, विप्रक्त शय्यासन, कायक्लेश, प्रायश्चित्त, विनय, वैद्यावृत, स्वाध्याय, व्युत्सग और ध्यान से १२ तप हैं।

इच्छाओं का जीतना तप कहलाता है x साधु के ८ मूल गुणों का पालन करना भी आचार्य वा स्वाध्याय को आवश्यक है।

१—सर्व प्रकार के भोजन का त्याग कर उपवास करना अनशन कहलाता है। २—भ्रूय से कम ग्याना या एकासन करना ऊनोदन कहलाता है। ३—भोजन को जाने समय घर या दम्पती कन्या आदि के पङ्गाहने का अटपटा नियम लेना व्रतपरि सख्यानतप कहलाता है। ४—छहा या एक दो आदि रसों का त्याग करना रसपरित्याग कहलाता है। ५—एकांत स्थान में सोना या बैठना विविक्तशय्यासन कहलाता है।

६—शरार को वश करने के लिये मर्दों, गर्मियों आदि का कष्ट देना कायकलेश कहलाता है। ७—नेपों का दण्ड लेना प्रायश्चित्त कहलाता है। ८—रत्नत्रय वा अपने धारकों का विनय करना विनयतप है। ९—रोगों या वृद्ध मुनि की सेवा करना वैयावृत्य कहलाता है। १०—शास्त्रों का पठना, पठना विचारना और उर देश स्वाध्याय तप कहलाता है। ११—शरार से ममता छोड़ना व्युत्सर्ग तप कहलाता है। १२—तरता में आत्मविन्तव्रत करना ध्यान तप कहलाता है।

धर्मों के नाम या अन्त लक्षण—

छिमा मारदव आगजव, मत्यवचन चितपाग ।

मज्जम तप त्यागी मन, आर्किचन तितत्याग ॥

अपमानित और दुखित स्थिती जाने पर बदला लेने का शक्ति हाने पर भी शोध न करना उत्तम-जमा कहलाती है। १—मान नहीं करना उत्तम मार्दव कहलाता है। २—कपट न करना उत्तम आज्ञा कहलाता है। ३—मन शीलना उत्तम मत्य कहलाता है। ४—मनोप धारण कर लोभ न करना और मन को परिव्रत रखना उत्तम शौच कहलाता है। ५—छह माय के जीवों की दया पालना और पाचा इन्द्रियों का मन को वश में रखना उत्तम समय कहलाता है। ६—गारह प्रकार का तप करना उत्तम तप कहलाता है। ७—चार प्रकार का दान देना और राग द्वेष आदि का त्याग

करना उत्तम त्याग कहलाता है। ६—परिमह का त्याग करना उत्तम आक्किञ्चन कहलाता है। और १०—स्त्रीमात्र का त्याग करना उत्तम ब्रह्मचर्य कहलाता है। ये दश धर्म हैं। जो प्राणिमा को ससार के ढलों से मुक्त कर उत्तम सुख प्राप्त कराता है वह धर्म कहलाता है।

आचारों तथा गुणियों के नाम व लक्षण—

दर्शन ज्ञान चरित्र तप, वीरज पञ्चाचार।

गोप्य मन वक्त्र काय को, गिन छद्म गुण मार ॥

दर्शनाचार ज्ञानाचार चरित्राचार, तप आचार और वीर्याचार ये ५ आचार (विनय) हैं १—सम्यग्दर्शन के दोष हटाना दर्शनाचार कहलाता है। २—सम्यग्ज्ञान को बढ़ाना और उसके दोष हटाना ज्ञानाचार कहलाता है। ३—सम्यक्चारित्र्य को विशुद्ध करना चरित्राचार कहलाता है। ४—तप की वृद्धि करना तप आचार कहलाता है। और ५—आत्म-बल का प्रगट करना वीर्याचार कहलाता है।

मनोगुण वचनगुण और कायगुण ये ३ गुणिया हैं। १—मन को बश म करना मनोगुण कहलाती है। २—वचन का बश में करना वचनगुण कहलाती है। ३—काय का बश म करना कायगुण कहलाती है।

गुण का लक्षण—त्रिपयाभिलाषा छोडकर मन, वचन, काय की स्वच्छन्द प्रवृत्ति का रोकना गुण कहलाती है।

रक्षाति, लाभ, पुत्रा और सत्कार आदि का दुःख के नहीं होने या सम्यग्ज्ञानपूर्वक जाने क अभिप्राय से दश धर्मों के साथ 'उत्तम विशेषण दिया है।

आवश्यकों का नाम वा लक्षण—

ममता धर वदन करै, नाना धृती बनाय ।

प्रतिभ्रमण स्वाध्यायजुत, कायोत्सर्ग लगाय ॥

ममता वन्दना, स्तुति प्रतिभ्रमण, स्वाध्याय श्रीर कायोत्सर्ग ये ६ आवश्यक हैं । १—ममस्त जीवा से समताभाव रखना समता कहलाती है । २—हाथ जोड़कर मस्तक से लगाकर नमस्कार करना वन्दना कहलाता है । ३—पञ्चपरमेष्ठी का गुणगान करना स्तुति कहलाती है । ४—लगे हुए दोषा पर परचात्ताप करना प्रतिभ्रमण कहलाता है । ५—शास्त्रा का पठना स्वाध्याय कहलाता है । आर ६—सडे होकर ध्यान लगाना तथा शरीर से ममत्व छुड़ाना कायोत्सर्ग कहलाता है । आवश्यक का लक्षण—प्रतिभ्रमण करने योग्य जरूरी कार्यों को आवश्यक रहते हैं ।

उपा याय परमेष्ठी का लक्षण—

जो मुनि स्वयं पढ़ते हैं तथा शिष्यों को सदा पढ़ाते और धर्मोपदेश देते हैं वा ११ अक्षर और १२ पूजक ज्ञानी होते हैं। अथवा चिन दिग्म्बर साधुआ में १—वादित्व, २—वाग्मित्व, ३—कवित्व और ४—गमनत्व गुण होते हैं २—ह उपाध्याय रहते हैं ।

उपा याय परमेष्ठी व मूलगुण—

चौदह पूर्व को धरै, ग्यारह अक्षर सुचान ।

उपाध्याय पञ्चीम गुण, पढ पदावें ज्ञान ॥

११ अक्षर और १२ पूर्वों का पठना पढ़ाना ही उपाध्याय के २२ मूलगुण हैं । इनके भा उत्तरगुण अनेक हैं ।

१—वादित्व = वाद में जीतने की शक्ति । २—वाग्मित्व = उपदेश देने में चतुरता । ३—कवित्व = कविता करने का चतुरता और ४—गमनत्व = टीका करने का योग्यता ।

ग्यारह अङ्गों के नाम—

प्रथमहिं आचाराङ्ग भनि, दूसौ सूत्रकृताङ्ग ।  
 ठाण अङ्ग तीजो सुभग, चौथो समवायाङ्ग ॥  
 व्याख्यापणति पाँचमो, ज्ञातृकथा षट् जान ।  
 पुनि उपामकाध्ययन है, अत कृत दश ठान ॥  
 अनुत्तरण उत्पाद दश, सूत्रविपाक पिछान ।  
 बहुरि प्रश्नव्याकरण जुत, ग्यारह अङ्ग प्रमान ॥

१ आचाराङ्ग, २ सूत्रकृताङ्ग, ३ स्थानाङ्ग, ४ समवायाङ्ग,  
 ५ व्याख्यापणति ६ ज्ञातृकथाङ्ग, ७ उपामकाध्ययनाङ्ग, ८ अन्त  
 कृतदशाङ्ग, ९ अनुत्तरोत्पादनदशाङ्ग, १० प्रश्नव्याकरणाङ्ग और  
 ११ विपाकसूत्राङ्ग ये ११ अङ्ग × हैं ।

चौदह पुरां के नाम—

उत्पादक पूर्व अग्रायणी, तीनों वीरनवाद ।  
 अस्तिनास्तिपरवाद पुनि, पचम ज्ञानप्रवाद ॥  
 छटो धर्मप्रवाद है, सत्प्रवाद पहिचान ।  
 अष्टम आत्मप्रवाद पुनि, नवमो प्रत्यारथान ।  
 त्रिानुवादपूरु दशम, पूवकल्याण महत्त ।  
 प्राणवादकिरिया बटुल, लोकिदि दु है अत ॥

१ उत्पादकपूर्व, २ अग्रायणीपूर्व, ३ वीरानुवादपूर्व, ४ अस्ति  
 नास्तिप्रवादपूर्व, ५ ज्ञानप्रवादपूर्व, ६ धर्मप्रवादपूर्व ७ सत्प्रवादपूर्व,

× अङ्गों को पूर्ण सत्तया १२ होती है । १ वें अङ्ग का नाम 'लट्टि  
 प्रवाद' है तथा अध्यायों को संसका पूर्ण ज्ञान नहीं होता । इसमें वह  
 यहाँ नहीं गिनाया गया है । १/पूर्व इसी चौदहवें अङ्गके भेद हैं ।

८ आत्मप्रवादपूर्व, ९ प्रत्याग्यानपूर्व, १० विद्यानुवादपूर्व, ११ कल्याणवादपूर्व, १२ प्राणानुवादपूर्व, १३ क्रियाविशालपूर्व और १४ लोकविन्दुपूर्व ये १४ पूर्व हैं ।

## साधुपरमेष्ठी का लक्षण

जो पोंचों इन्द्रियों के विषया की चाह नहीं करते, बुद्ध भी परिग्रह नहीं रखते आरम्भ नहीं करते, सदा ही ज्ञान ध्यान तप में लीन रहते हैं आत्मस्वरूप या मोक्षमार्ग का साधन करते हैं उन्हें साधुपरमेष्ठी या सुगुरु कहते हैं ।

साधुपरमेष्ठी के मूलगुणों के नाम—

पत्र महाव्रत समिति पत्र, पचेन्द्रिय का शेष ।

पद् आवश्यक साधुगुण, सात शेष अवबोध ॥

५ महाव्रत, ५ समिति, ५ इन्द्रियविजय, ६ आवश्यक और ७ शेष ये २८ साधुपरमेष्ठी के मूलगुण हैं । इनमें से ६ आवश्यकों का वर्णन आचार्यपरमेष्ठी के मूलगुणा में हो चुका है ।

महाव्रतों के नाम का लक्षण—

हिंसा अनृत तस्फरी, अमह्य परिग्रह पाप ।

मन वच तन तै त्यागत्रौ, पच महाव्रत थाप ॥

१ अहिंसा महाव्रत, २ सत्यमहाव्रत, ३ अचौर्यमहाव्रत, ४ ब्रह्मचर्यमहाव्रत और ५ परिग्रहत्यागमहाव्रत ये ५ महाव्रत हैं ।

मन, वचन, काय से सर्वथा हिंसा का त्याग करना अहिंसा महाव्रत कहलाता है । २ सत्यमहाव्रत का लक्षण—मन, वचन, काय से सत्वा असत्य का त्याग करना सत्यमहाव्रत कहलाता

साधुआ में ही याग्यतानुसार आचार्य का उपाध्याय पद होते हैं ।

है। ३ अचौयमहाव्रत का लक्षण—मन, वचन, काय से सर्वथा चोरी का त्याग करना अचौयमहाव्रत कहलाता है। ४ ब्रह्मचर्य महाव्रत का लक्षण—मन वचन, काय से सर्वथा मैथुन का त्याग करना ब्रह्मचर्यमहाव्रत कहलाता है। ५ परिग्रहत्यागमहाव्रत का लक्षण—मन, वचन, काय से सर्वथा ४ परिग्रह का त्याग करना परिग्रहत्यागमहाव्रत कहलाता है।

समितियों के भेद का लक्षण—

इर्या भाषा एपणा, पुनि क्षेपण आदान।  
प्रतिष्ठापना जुत त्रिया, पाचा समिति विधान॥

१—इर्या, २—भाषा, ३—एपणा, ४—आदाननिक्षेपण और ५—प्रतिष्ठापना ये ५ समितियाँ हैं। १—इर्यासमिति का लक्षण—गमन करते समय चार हाथ आगे पृथिवी देरने का ध्यान रखना इर्यासमिति कहलाती है। २—भाषासमिति का लक्षण—वचन बोलते समय हित और परिमित बने का लक्ष्य रखना भाषा समिति कहलाती है। ३—एपणासमिति का लक्षण—आहार के विषय में एकवार विदापता और शुद्धि का विचार रखना एपणासमिति कहलाना है। ४—आदाननिक्षेपणसमिति का लक्षण—अपने शास्त्र, पीछा और कमण्डलुआदि धरत उठाने समय भूमि शोधना आदान निक्षेपणसमिति कहलाती है। ५—प्रतिष्ठापनासमिति का लक्षण मज्जमूत्र आदि क्षेपण करते समय भूमि की प्रासुक्ता (जीवरहितता) का लक्ष्य रखना प्रतिष्ठापना समिति कहलाती है।

मन, वचन, काय से सर्वथा पापों पापों का पूर्ण त्याग करना महाव्रत कहलाता है। गमनादि में जीवघात से वचन के लिये यत्नाचार रखना समिति कहलाती है।

साधु के पाच इन्द्रियविषय और सात शेष मूलगुण—  
 मपरम रमना नामिका, नयन भोजन का रोध ।  
 शेष मात मजनतजन, शयन भूमि का शोध ॥  
 वस्त्रत्याग कन्लुच अरु, लघु मोचन इकवार ।  
 दांतुन मुख में ना करें, ठांडि लेहिं अहार ॥

स्पर्शन-रमना प्राण उल्ल रण इन पाचों इन्द्रियों को बरा  
 में करना—उनके इष्ट और अनिष्ट विषया म राग द्वेष नहीं  
 करना ये पाच 'इन्द्रियविषय' नामक पाच मूलगुण हैं ।

१—स्नान का त्याग २—शयन करते समय भूमि का  
 शोधन, ३—वस्त्रत्याग, ४—जाला का लाच करना, ५—भोजन  
 दिनें म एक बार का थोड़ा करना, ६—दातान नहीं करना और  
 ७—आहार लडे होकर लेना ये ७ साधुपरमेष्ठी के शेष मूलगुण हैं ।  
 उत्तरगुण इनके भी अनक हैं ।

पचपरमष्ठा क सम्पूर्ण मूलगुण—

अरिहता ल्यालीमा, मिद्धा अद्वेज मूर लत्तीमा ।  
 उवज्ञाया पणरीसा, साहूण होंति अटरीषा ॥

पाचों परमेष्ठिया के क्रमश ६६ + ८ + ३६ + २५ + २८ =  
 १४३ एकसौ तनालीम मूलगुण होते हैं । उत्तर गुण का पार नहीं ।

प्रकारांतर मे साधु परमेष्ठी क मूलगुण—

पच महाप्रत आदरन, समिति पंच परकार ।  
 प्रवल पच इन्द्रिय विजय, पट आचशिक आचार ॥  
 भूमिशयन मननजन, वसनत्याग कचलोच ।  
 एकवार लघुअशन पिति, अशन दतवन मोच ॥



## प्रश्नावली



१—अतिशय, अमुक  
आचार, अमुक आपश्यक  
अमुकगुण अमुकचतुष्टय,  
अमुकतप, अमुकधर्म, अमुक  
परमेष्ठो, अमुकमहान्त,  
अमुकसंमति, अमुकसिद्ध  
गुण, अनंतचतुष्टय, आचार  
आपश्यक गुण, तप, धर्म,  
परमेष्ठी, प्रातिहार्य, वज्ररूप  
भनाराचसहनन, महाव्रत,  
मूलगुण, समचतुरश्रसंस्थान  
और समिति का स्वरूप  
क्या है ?

२—अज्ञान और महा-  
व्रत में अरिहन्त और सिद्ध  
में, आचार-पाध्याय या  
साधु में अन्तर क्या है ?

३—अरिहन्त परमेष्ठी पर  
उपसंग नहीं होता, तो पश्य  
नायस्वामी पर कमठ ने  
उपसंग कैसे किया ?

४—अरिहन्त भगवान्  
में वा साधारण मनुष्यों में  
वाही जाते हैं क्या क्या  
अन्तर होता है ?

५—अतिशय, अग्रिहतगुण  
आचार, आचार्यगुण, आपश्यक,  
अज्ञ, उपायगुण, केवल  
ज्ञानातिशय, गुण, घातिया,  
चतुष्टय, जन्मातिशय, तप,  
देवतातिशय, दोष, द्वादशांग,  
धर्म, परमेष्ठी, पूर्व, परमेष्ठो के  
पूरा मूलगुण, प्रातिहार्य,  
महान्त, मग्नद्रव्य, रस,  
संमति, साधुगण, सिद्धगुण  
और समय के भेद का नाम  
गिनाइये ?

६—महावीर स्वामी जब  
पैदा हुये थे तब उनमें अन्य  
मनुष्यों से कौन कौन असा  
धारण बातें थीं ?

७—नेपथ्य अतिशय कब  
प्रगट हात हैं, केवलज्ञान के  
पाहले या पाछे ?

८—अरिहन्त मुनि हैं या  
गर्हो ? क्या समस्त मुनियों  
के केवल ज्ञान होने पर केवल,  
ज्ञान के अतिशय प्रगट  
हात हैं या केवल अरिहन्तों  
में ?

६—भगवान की वाणी किस भाषा में लिखती है ? उसे सब समझ सकते हैं या नहीं ?

१०—दोष किम किस पर मेष्टो में और कब नहीं होत हैं ?

११—मोक्ष में रहने वाले जीवों को परमेष्टो कह सकते हैं या नहीं ?

१२—उपाध्याय किनको क्या पढ़ाते हैं ?

१३—नारद्वें अज्ञ का क्या नाम है ? पूर्व उससे जुड़े हैं क्या ?

१४—साधु क गुणा का पानन आचार्य और उपाध्याय करते हैं या नहीं ?

१५—आश्रयक, पंचाचार, प्रातिहार्य, महात्रन, अतिशय, गुप्ति और समिति किसके हाती है ?

१६—परमष्टियो में सब से बड़ा पद किसका होता है ?

१७—तुम भी कभी परमेष्टो हो सकते हो क्या ?

१८—साधु परमेष्टो कौन कौन वस्तु रग्न सकते हैं ?

१९—आरहन्त और सिद्ध में पहिले किसे नमस्कार क ना चाहिये और क्या ?

२०—मुक्त जाग में कितने कितने और कौन कौन गुण होते हैं ? किस कम के साथ से कौन गुण प्रगट हाता है ?

२१—आचार्य और साधु में पहिले किस पद की प्राप्ति होती है ?

२२—उपाध्याय पूर्वो और अज्ञा के पाठो होते या हाती ?

२३—अपराध हान पर मुनिराज क्या करते हैं ?

२४—खाने, पीने, नहाने, पहिनने, सोने और चलने आदि कार्यों में हम में और साधु में क्या अंतर ह ।

२५—एक परमेष्टो क गुण दूसर परमेष्टो में हो सकते हैं या नहीं ? सप्रमाण कहिये ।

२६—तुमने किस परमेष्टो को देखा है ?

२७—मृत्तिया कौन परमेष्टो हैं ? और वे किस किस परमेष्टो की होती हैं ?

# पाठ तीसरा

## सप्तव्यसन का वर्णन

विन कार्यों के करने से आत्मा भलाई (कल्याण) से विमुख हो जाता है उन्हें व्यसन कहते हैं। अथवा पतन को कारण बुरी ( जो पीछे लग जाने पर काठनाइ से छूटती है ऐसी ) आदत या ज्यादह आसक्ति को व्यसन कहते हैं।

हानि व्यसन सेवन करने वाले व्यसनी कहलाते हैं। इसलोक और परलोक में उन्हें दुःख और अपयश उठाना पड़ता है। दुर्गति की प्राप्ति होती है।

व्यसन के नाम या भेद—

जूआ चोरी मांभ मद, वेश्या रमण शिकार ।

पर रमणी रति ध्यसन ये सातों हैं दुःखकार ॥

१ जुआ खेलना, २ मांस खाना, ३ मदिरापान करना, ४ शिकार खेलना, ५ वेश्यागमन करना, ६ चोरी करना और ७ परस्त्रीसेवन करना ये सात व्यसन हैं।

जूआ का लक्षण—

हार या जीत के रयाल से शर्त लगाकर कोई काम करना जुआ खेलना कहलाता है। हानि—जूआ खेलने वाले जुआरी कहलाते हैं। जुआरी का हर जगह अनादर होता है। राजा उसे दण्ड देता है उसका कोई विश्वास नहीं करता। जुआरी को अथ सब व्यसना में जबरन फँसना पड़ता है। जुआरी कभी कभी भी बन जाता है। कभी अपनी स्त्री को भा दाव पर लगाने देता है। जुआ से युधिष्ठिर का राज्य से भी हाथ धोना

हा था। कहा भी है कि—

जुआ खेले, मनुष्य की रहती जेक न ॐआव ।

औरों की गिनती कहा, पाण्डव हुए खराब ॥

मास व्यसन का लक्षण—

जीवों को मार कर अथवा मरे हुए जीवों का क्लेश (शरीर) खाना मास खाना कहलाता है। हानि—मास खाने वाले हिंसक और निन्द्य कहलाते हैं। मास में अनन्त जीव होते हैं। इसके काटने और पकाने में घोर हिंसा होती है। इसके खाने से शरीर में अनेक रोग भी हो जाते हैं। सप्ताह में दूध, दही, घी, मिठाई, अन्न, शाक और फल खाने को है, फिर भी मूर्ख जन मास खाते हैं, यह खेद की बात है। मासभक्षण से बक राजा के समान महान् दुःख होता है। कहा भी है कि—

बक राजा ने मास खा, खोया राज महान ।

मर कर दुर्गत को गया, हुआ यहा अपमान ।

मदिरापान व्यसन का लक्षण—

भाग, गांजा, शराब, अफीम, कोकीन, तमाखू और चरस इत्यादि मादक पदार्थों का सेवन करना मदिरापान कहलाता है। हानि—इसका सेवन करने वाला शराबी और नशेवाज कहलाता है। उसका धर्म, कर्म, विवेक और ज्ञान नष्ट हो जाता है। काम, क्रोध, बेहोशी आदि क्लेश हो जाते हैं। उसके मुख में कुत्ते भी मूत जाते हैं महान् हिंसा का पाप लगता है। तथा एक पाद सन्यासी के समान दुर्गति होती है। कहा है कि—

मदिरा पी मर्रा मलिन, लोटे पीच बजार ।

मुख में मूतें कूकरा, चाटे बिना विचार ॥

ॐआव = इज्जत या आदर ।

‘एकपाद’ साधू यहा, कर कर मदिरापान ।  
चाण्डालों क हाथ से, खो बैठा निज जान ॥

### शिकार व्यसन का लक्षण—

जगल में स्वतन्त्र फिरने वाले सिंह, बाघ, सुप्रर और हरिण वगैरह जानवरों को तथा आकाश में उड़न वाले पक्षियों को या ज़मी भी प्राणी का मासहार या शौक से लिये बन्दूक आदि हथियारों में मारना शिकार खेलना कहलाता है। हानि— शिकार खेलने वाले शिकारी, निन्द्य और हत्यार कहलाते हैं। उनके परिणाम बहुत ही क्रूर हो जाते हैं। उनके हाथ में हथियार देखते ही प्राणी डर जाते हैं। ये पापी और का जान को अपने ममान न समझ भैरव शिकारी क समान कभी अपने प्राण भा गमा देते हैं। कहा भी है कि—

जैसे अपने प्राण हैं, तैस पर क जान ।  
कैसे हरते दुष्ट जन, विना बैर पर प्राण ॥  
भैरव ने मारा हरिण, कमा सुप्रर पर वान ।  
जीता ही शूफर बचा, ली भैरव की जान ॥

### वेश्यागमन व्यसन का लक्षण—

वेश्या से रमण करने की इच्छा करना, उसने घर आना जाना, उससे सम्बन्ध रखना वेश्यागमन कहलाता है। हानि— वेश्यागामी लुचा, बदमास और च्यभिचारी कहलाता है। वेश्यागमन से अनेक प्रकार के असाय रोग हो जाते हैं। शरीर और धन हीण हो जाता है। हिंसा का पाप लगता है। जगत में निन्दा होती है। बुद्धि विगड़ जाती है। तथा चारदत्त के समान दुदशा होती है। कहा भा है कि—

चारुदत्त की चतुरता, 'तिलका' ने ली चूर ।  
 पूरा उमका धन हड़प, दिया नालि में पूर ॥  
 द्विज स्वामी कोली पनिक, गनिका चाखत लाल ।  
 ताकों सेवत मृद जन, मानत जनम निहाल ॥

चोरी व्यसन का लक्षण—

किसा की गिरी हुई, भूली हुई या रखी हुई वस्तु छिपाने की नियत से ले लेना या लेकर किसी दूसरे को दे देना चोरी कहलाती है । हानि—चोरी करने वाले को चोर कहते हैं । नमका कोई विश्वास नहीं करता है । राजा दण्ड देता है । धन प्राणों से भी प्यारा होना है, इसलिये धन हरने वाले को प्राण हरने का पाप लगता है । चोर की अपसर नामक चोर सायु के मामाग दुर्दशा होता है । कहा भी है कि—

अपसर मातृ होय कर, चोरी कर भतिहीन ।  
 राजदण्ड की भोग कर, मरा लही गति हीन ॥

परस्त्रीसेवन व्यसन का लक्षण—

वर्मानुकूल अपनी विवाहिता स्त्री के सिवाय दूसरी स्त्रियों के साथ रमण करना परस्त्रीसेवन कहलाता है । हानि—अपनी विवाहिता स्त्री को छोड़ अन्य स्त्रियों मा, बहिन और लक्ष्मी के समान हों । इसलिये परस्त्रीसेवन करने बाल से मा, बहिन व बेटों के साथ विषय सेवन करने का पाप लगता है । समाज व राजा दण्ड देता है । अमाध्य रोग हो जाने हों । शरीर व धन क्षीण हो जाता है । पिसा का पाप लगता है । गौरव जाता रहता है । और राजण व समान लोकनिन्दा होती है । कहा भी है कि—

ना सेई नहीं टुड, रावन पाई घात ।

चली जात निन्दा अजों, जग म भई विन्धात ॥

## जुआ व्यसन की प्रधानता—

किसी मनुष्य को कुमङ्गति के कारण जुआ खेलने का चरका (व्यसन) लग गया। जब वह अपना सारा धन जुए में हार गया तब उसे जुआ के लिये धन की आवश्यकता हुई इससे वह चोरी कर जुआ खेलने लगा।

चोरी में निपुण हो जाने पर जुआ खेलने के बाद भी उसके पास धन बचने लगा। एक दिन वह वेश्या के द्वार के सामने से जा रहा था कि उसके एक जुआरी मित्र ने आवाज देकर उसे वहाँ बुलाया। उसे देखकर वेश्या ने अपने हाव भाव वा कटाक्षों से उसे अपने पर अनुरक्त कर लिया। तब वह वेश्या सेवन करने लगा और चोरी द्वारा बहुत धन लाकर वेश्या को देने लगा।

वेश्यासेवन में आनन्द की वृद्धि के लिये वेश्या ने मदिरा पान का चरका भी उसे लगा दिया। तब वह दिनरात मदिरा के नशे में चूर रहने लगा।

मदिरा के नशे में उसे खाद्य और अखाद्य का विचार भी नहीं रहा और वह वेश्या के साथ मास आदि अखाद्य वस्तुएँ भी खाने लगा।

मांसभक्षण की आदत पढ़ जाने से मांसप्राप्ति के लिये वह जंगल आदि में पशु पक्षियों का शिकार करने लगा। जिससे वह क्रूरपरिणामी हो गया।

क्रूरपरिणामी हो जाने और नशे में चूर रहने के कारण वह परस्त्रियों के साथ बलात्कार भी करने लगा। तथा बलपूर्वक बनना सतीत्यहरण कर अधिक व्यभिचारी और लाल निन्द्य हो गया।

इस प्रकार एक जुआ-व्यसन क लग जान से वह क्रमशः सार्ता व्यसनों का सेवन करने वाला, अतिपापी भ्रष्ट और

दुर्गति का पात्र बन गया। इसलिये जुआ सबसे बुरा व्यसन है। इसका सर्जया त्याग कर देना चाहिये। ये व्यसन उडे हा दुःख दायी हैं। व्यसन का अर्थ ही दुःख है। इसलिये इनमे मदा दूर रहना चाहिये।

## प्रश्नावली—

१—चोरा व्यसन, जुआ व्यसन, परस्त्रीव्यसन, वेश्या व्यसन, मदिरापानव्यसन, मास व्यसन शिकारव्यसन का लक्षण वा प्रत्येक व्यसन के सेवन म हानि बतलाइये ?

२—व्यसन के भेद या नाम गिनाइये ?

३—परस्त्री और वेश्या में क्या अन्तर है ?

४—सबमे बुरा व्यसन कौनसा है और क्या ?

५—सबसे अच्छा व्यसन कौनसा है ?

६—परस्त्रा सेवन से मा धदिन घेतो के सेवन का पाप क्यों लगता है ?

७—परस्त्री का त्यागी वेश्या का त्यागी है या नहीं ?

८—ऐमे कौन व्यसन है जिनके सेवन म हिंसा होती है ?

९—वसन्त तिलका वेश्या के एक ही भव में १८ नाते कैसे हुए ?

१०—भाग धोड़ी, चिलम पीना मदिरापान है या नहीं ?

११—तारा, शानरु, सट्टा, लाटरी, जीवनवामा, कबड्डी, जुआ है या नहीं ?

१२—किस किम व्यसन स किम किस ने दुःख पाया है ? किसो एक की क्या सुनाओ ?

१३—न्यारहवा प्राण कौन है और क्यों ?

१४—अमुक श्लोक पूरा कीजिये ?

१५—दूसरा की रक्षा के लिये हिंसक पशुओं या जीवों को मारना अच्छा है या बुरा ? कारणमहित उत लाइये ?



# पाठ चौथा

## श्रावक के अष्टमूलगुणों का वर्णन



### मूलगुण का लक्षण—

श्रावक ने सबसे पहिले मुख्य नियमों को मूलगुण कहते हैं। कोई भी व्यक्ति जब तक इन मूलगुणों को धारण नहीं करता, तब तक श्रावक नहीं कहला सकता। इसलिये श्रावक बनने के लिये मूलगुणों का धारण करना आवश्यक है। मूल का अर्थ 'जड़' है जैसे जड़ के बिना पेड़ नहीं टहर सकता उसी प्रकार कुछ नियम ऐसे हैं जिनका पहिले पालन किये बिना प्राणी श्रावक नहीं कहला सकता इन नियमों को ही मूलगुण कहते हैं।

### श्रावक के मूलगुणों के भेद—

(१) मद्यत्याग, (२) मासत्याग, (३) मधुत्याग, (४) बडत्याग, (५) पीपलत्याग, (६) पामरत्याग, (७) कठूमरत्याग तथा (८) गूलरत्याग इस प्रकार तीन मकार का त्याग और पाच उदुम्बर फलों का त्याग ये श्रावक के आठ मूलगुण हैं।

### मद्यत्याग मूलगुण का लक्षण—

शराब, भंग, गाजा, अफीम, चरम, तम्बाखू, बीड़ी और घुस्ट आदि नशीली वस्तुओं के सेवन का त्याग करना मद्यत्याग मूलगुण कहलाता है। महुआ, खराबगुड ( राध ), ताड़ चरस आदि पदार्थों को मिला और सड़ा कर ( शराब ) बनाई जाती है।

---

ॐ मद्य, मास और मधु को मकार इसलिये कहते हैं कि इनका पहिला अक्षर 'म' है।

हानि — वस्तुओं के मडों में हर समय सूक्ष्म प्रसजीव पैदा होते और मरते रहते हैं। जीवहिंसा के बिना शराब किमी प्रकार तैयार ही नहीं हो सकती। इसलिये शराब पीने से जीव हिंसा का पाप लगता है। शराब पीने से मनुष्य पागल सा हो जाता है। उसे भले घुसे का ध्यान नहीं रहता। कभी कभी शराबी के मुख में बुत्ते पेशाब कर जाते हैं। इसी प्रकार भाग, अफीम और तम्बाकू वगैरह वस्तुएँ भी स्वास्थ्य और विज्ञान को विगाडती हैं इसलिये इनका त्याग करना ही उचित है।

#### मासत्याग मूलगुण का लक्षण—

मास खाने का त्याग करना मासत्याग मूलगुण कहलाता है। इस जीवों के मृत शरीर को मास कहते हैं।

हानि — मास में हर समय अनेक सूक्ष्म प्रसजीव पैदा होते और मरते रहते हैं। मास को छूने से ही ये जीव मर जाते हैं। इससे मासभक्षी अनेक जीवों की हिंसा करता है। मास भक्षण से अनेक प्रकार के रोग हो जाते हैं। बुद्धि भ्रष्ट हो जाता है। स्वभाव क्रूर हो जाता है। इसलिये मास खाने का त्याग करना ही उचित है।

#### मधुत्याग मूलगुण का लक्षण—

शहद खाने का त्याग करना मधुत्याग कहलाता है। हानि — शहद मधुमक्खियों का प्रसन्न (कच या गाल) है। बहुत से लोग मक्खियों के छत्ते को निचोड़ कर शहद निकालने हैं। छत्ते में छोटी छोटी मक्खियाँ रहती हैं। छत्ते को निचोड़ने से वे सब मर जाती हैं और उन सबका रस शहद में आ जाता है। मधु में हर समय अनेक सूक्ष्म प्रसजीवों की उत्पत्ति होती रहती है। ऐसी अपवित्र, हिंसा की खानि और घृणाकारक वस्तु के खाने का त्याग करना ही उचित है।

## पाच उदुम्बरत्याग मूलगुण—

वड़ फल, पीपल फल, पाकर फल, गूलर फल और कटूमर फल इन फला के खाने का त्याग करना पाच उदुम्बरो का त्याग करना कहलाता है।

हानि — इन फलों में छोटे छोटे अनेक घमजीव रहते हैं। वे जीव अनेकों में तो साफ साफ दिखाइ देते हैं और अनेकों में छोटे होने से दिखाइ नहीं देते। तो भी उनकी पैदायश का ये स्थान है। इन फला के खाने से वे सब जीव मर जाते हैं। इस लिये इन फलों के खाने का त्याग ही उचित है।

नोट — किन्हीं आचार्यों ने मद्य, मास, मधु और पाच पापों के त्याग को भी अष्टमूलगुण कहा है। इसके अतिरिक्त इन मूल गुण के विषय में और भी कई मत हैं। चिनका विवरण हमारे 'रत्नकरण्डभावन्याचार ग्रन्थ के श्लोक न० ६६ से जानना।

## प्रश्नावली—

१—मद्य, मधु, मास वा मूलगुण का लक्षण किये ?

२—मद्य, मधु वा मास के खाने से क्या हानि है ?

३—मद्य, मधु वा मास कैसे बनता है ?

४—ये आठ मूलगुण किसके होते हैं ?

५—उदुम्बर, मकार वा मूलगुणों के भेद बतलाइये ?

६—क्या सभी फला के खाने में दोष है वा केवलवड़, पीपल आदि के ही खाने में ? कारण—सहित बतलाइये।

७—मास का त्यागी मद्य सेवन क गा या नहीं ?

८—सवथा जीवहिंसा का त्यागी मूलगुणधारी है या नहीं ?

९—मूलगुणों का धारी व्यसनसेवन करगा या नहीं ?

# पाठ पांचवां

## अभक्ष्य का वर्णन



### अभक्ष्य का लक्षण—

जो पदार्थ खाने ( भक्षण करने ) योग्य नहीं होते उन्हें अभक्ष्य कहते हैं ।

### अभक्ष्य के भेद—

१—असहिष्णकारक, २—बहुस्थायर-हिंसाकारक, ३—प्रमादकारक, ४—अनिष्ट शार ५—अनुपसेव्य ये अभक्ष्य के भेद हैं ।

### असहिष्णकारक अभक्ष्य का लक्षण—

जिन पदार्थों के खाने से असहिष्णकारक अभक्ष्य कहते हैं । जैसे—बड़, पोपल, ऊमर, मुर्ली, बेर, कमल की डंडी के समान पोले पदार्थ, बीघा (घुना) अन्न, अमर्यादित घस्तु, मुरब्बा और † द्विदल आदि के खाने से असहिष्णकारक अभक्ष्य का घात होता है ।

### स्थायरहिंसाकारक अभक्ष्य का लक्षण—

जिन पदार्थों के खाने से अनन्तस्थायर जीवा का घात होता है वह स्थायरहिंसाकारक अभक्ष्य कहते हैं । जैसे—आलू, घुइया, मूली, गाजर, लहसुन, अदरक, शरकरा, सूरण,

† दलने पर चिनरे प्राय धरानर बराबर दो टुकड़े होते हैं ऐसे उदद, मूग, चना आदि को कच्चे दूध, कच्चे दही और कच्चे दूध में जमाये गये छात्र में मिला कर म्याना द्विदल नहलाता है । उसमें मुर की लार मिलते ही असहिष्णकारक अभक्ष्य पैदा हो जाते हैं ।

## प्रश्नावली



१—अज्ञानफल, अनिष्ट, अनुपसेव्य, अभक्ष्य, कन्दमूल, घलितरस, तुच्छफल, प्रस हिसाकारक, द्विदल, प्रमाद फारक, बहुबीजन वा विष का लक्षण कहिये ।

२—अभक्ष्य का त्यागी मूलगुण का घाती है या नहीं ?

३—दूध, दही या छाछ न मिलाने पर मूग, चड़द वगैरह द्विदल कहलावेंगे या नहीं ?

४—प्रस और स्थावरों की हिंसा किन अभक्ष्य पदार्थों के राने में होती है ।

५—मम्पूण शाक पात का त्यागी किन्तु अय चीजों का खाने वाला अभक्ष्य का त्यागी है या नहीं ?

६—अभक्ष्य के भेद या नाम बतलाइय ।

७—कौन कौन से पदार्थ क्या क्या मिलाने से द्विदल हो जाते हैं ।

८—पेड़ा, टमाटर, गोभी का फूल, घेर, घा, बदाम का रायता, अप्रासुक दूध, नीबू का अचार, आलू, कमलगट्टा, खीरा, मूली मम्पूण, शहद और दहायड़ा इनमें अभक्ष्य कौन कौन हैं ?

९—अनिष्ट और अनुपसेव्य में क्या अंतर है ? प्रत्येक के दो दो उदाहरण भी बताइये ?

१०—क्या सभी शाकपात अभक्ष्य हैं ?

# पाठ छटवों श्रावक के व्रतों का वर्णन



व्रत का लक्षण—

सेवन करने योग्य विषयों का कुछ दिनों की मर्यादा लेकर सतिज्ञापूर्वक त्याग करना या हिमा आदि छोटे कार्यों का उन्मूलनपूर्वक निलकुल त्याग करना और अच्छे कार्यों के करने का नियम लेना व्रत कहलाता है।

व्रत के भेद—

पाच अणुव्रत तीन गुणव्रत, चौं शिक्षाव्रत शास्त्रविधान ।  
घन कर श्रावक व्रत बारह, भेद बताओ तुम बुधिमान ॥

१ अणुव्रत, ३ गुणव्रत और ४ शिक्षाव्रत ये १० व्रत के भेद हैं। इन्हें श्रावक के उत्तरगुण भी कहते हैं। ये मूलगुणों के बाद पाले जाते हैं अथवा मूलगुणों की अपेक्षा उत्तम हैं इस लिये इन्हें उत्तरगुण कहते हैं। इनका पालने वाला श्रावक 'व्रती या व्रतप्रतिमाधारी' कहलाता है।

## अणुव्रत का लक्षण—

जिन्हें सर्वसाधारण ( जेनेतर ) जन भी हिंसा, भूठ आदि कहते हैं उन हिंसा, भूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रह के कुछ अंश के त्याग को अणुव्रत कहते हैं। श्रावक के ये व्रत महाव्रतों की अपेक्षा लघु ( छोटे ) होते हैं इसलिये इन्हें अणुव्रत कहते हैं।

अणुव्रत के भेद—

१ अहिंसाणुव्रत, २ मत्याणुव्रत, ३ अचौर्याणुव्रत, ४ ब्रह्मचर्याणुव्रत और ५ परिग्रहपरिमाणुव्रत ये पाच अणुव्रत के भेद हैं। किन्हीं आचार्यों ने रात्रिभाजनत्याग नामक छटवां अणुव्रत भी माना है।

## अहिसारागुप्त का लक्षण—

जिस जीव का मरपी ( इरादा पूषक ) हिसा का करना अहिसारागुप्त कहलाना है । अहिसारागुप्ती ' मैं इम को मारू " ऐसे सक्ल्प ( इरादा ) स कमी किसी का घात करता, न वचन द्वारा किसी से कहता है कि तुम इसे मारो न कभी किसी जीव के मारने का विचार करता है ।" घनान, व्यापार करने और शत्रु से अपने को बचान में जीव होती है उमका त्यागी गृहस्थ नहीं होता । तो भी यन्नाया दया का भाव रखता है । वह स्थानर जीवों की भी व्यवस्था नहीं करता ।

## सत्यागुप्त का लक्षण—

स्थूल भूठ धोलने का त्याग करना सत्यागुप्त का लक्षण है । अर्थात् स्थूल (मांटा) भूठ न तो आप धोलना और न से बुलाना और ऐसा सच भी नहीं धोलना जिसके वी किसी जीव या धम का घात हो जाय, उसे सत्यागुप्त कहलाना है ।

## अर्चौरागुप्त का लक्षण—

प्रमाद या लोभ के बश होकर किसी की गिरी, पद या भूली हुई वस्तु जिना दिये स्वयं नहीं लेना और व किसी दूसरे को भी नहीं देना अर्चौरागुप्त कहलाना है ।

## वक्षयारागुप्त का लक्षण—

परस्त्री या परपुरुष के साथ रमण, घुरी जिगाह, तथा गन्दा वातालाप वा व्यवहार करने का त्याग करना

छे राय का कर नहीं चुकाना, कमबठ तौलांग, दूध म धो में तेल मिलाता, भूठ विज्ञापन दना, माल का नम

उन पर बहिन वा भाइ के समान दृष्टि रखना ब्रह्मचर्याश्रावत कहलाता है।

**परिमहपरिमाणश्रावत का लक्षण—**

स्वैत, मरान, रुपया, पैसा, सोना, चाँदी, पशु, अनाज, दासीदास, बस्त्र और चर्तन वगैरह वस्तुओं का अपनी इच्छा और निवाह के अनुसार परिमाण कर लेना कि मैं जन्म भर के लिये इतनी रखूँगा बाकी सब का त्याग कर देना परिमह—परिमाणश्रावत कहलाता है।

**शिखाव्रत का लक्षण व भेद—**

अश्रावतों में गुण लाने वाले अधातु अश्रावतों के पालन में उपकार करने वाले व्रतों को गुणव्रत कहते हैं। १—दिग्भ्रत, २ दशभ्रत और ४ अनर्थदण्डभ्रत ये ३ गुणव्रत व भेद हैं।

**दिग्भ्रत का लक्षण—**

लोभ वा आरम्भ घटाने के लिये दशा दिशाओं में आने जाने की मयादा जीवन भर के लिये कर लेना दिग्भ्रत कहलाता है। इसव्रत का धारी इस प्रकार नियम करता है कि—मैं अमुक दिशा में अमुक पर्वत, नदी या नगर से आगे जीवनपर्यन्त नहीं जाऊँगा। जैसे—किसी मनुष्य ने पूव में ब्रह्मदेश, पश्चिम में सिन्धुनदी, उत्तर में हिमालय पर्वत और दक्षिण में कन्याकुमारी से आगे जीवन भर नहीं जाने का नियम ले लिया तो यह नियम दिग्भ्रत कहलावेगा। धमकाय के लिये मयादा नहीं का जाती है।

**देशभ्रत का लक्षण—**

दिग्भ्रत में जीवनपर्यन्त को वा गइ आने जाने के क्षेत्र की मयादा घड़ी, घण्टा, दिन, पक्ष, महिना वगैरह नियत समय तक घटाना देशभ्रत कहलाता है। जैसे—किसी ने दिग्भ्रत लेकर



पूर्वदिशा में जीवन भर ब्रह्मदेश से आगे नहीं जाने का नियम लिया था, अब यह नियम करता है कि मैं अठाइस पर्यन्त मशिपर जी से आगे न जाऊँगा। फिर किसी और दिन यह नियम करता है कि आज मैं अपने ग्राम से बाहर न जाऊँगा, तो इसका यह नियम देशत्रत समझना चाहिये।

### अनर्थदण्डघ्न का लक्षण—

जिना प्रयोजन ही जिन कार्यों में पाप का आरम्भ होता है उन कार्यों का त्याग करना अनर्थदण्डघ्न कहलाता है। इस त्रत का धारी कभी किसी को हिंसा बगैरह पाप का उपदेश नहीं देता, किसी को जहर हथियार बगैरह हिंसा के उपकरणों का मांगे नहीं देता, किसी का घुरा नहीं त्रिचरता, कपाम उत्पन्न करने वाली कथाएँ नहीं सुनता और बेमतलब पानी ढालना, मनस्पति छेदना व जमीन खोदना बगैरह कार्य व्यर्थ नहीं करता।

### गुणत्रत का लक्षण वा भेद—

जिन त्रतों के पालन से मुनित्रत के आश्वास की शिक्षा मिलती है, उन्हें शिक्षात्रत कहते हैं। उसके सामायिक, प्रोपधोपवास, भोगापभोगपरिमाण और अतिथिसविभाग ये ४ भेद हैं।

#### सामायिक शिक्षात्रत का लक्षण —

निरिचत समय तक मन, वचन, कथ और कृत, कारित, अनुमोदना से पाँचों पापों का त्याग करना तथा सबसे राग द्वेष द्योड़ कर शुद्ध आत्मा का अनुभव करना सामायिक शिक्षात्रत कहलाता है। सामायिक की विधि इसी पुस्तक में अलग देखिये।

#### प्रोपधोपवास शिक्षात्रत का लक्षण—

प्रत्येक अष्टमो और चतुर्दशी को समस्त आरम्भ वा विषय कपाम तथा मव प्रकार के आहार का त्याग कर १६ पहर

तत्र अमध्यान करना प्रोषधोपवास कहलाता है। दिन भर में एकवार भोजन करना प्रोषत्र (एकाशन) कहलाता है। सर्वथा भोजन नहीं करना उपवास (अनशन) कहलाता है। दो प्रोषधों के बीच एक उपवास करना प्रोषधोपवास कहलाता है।

प्रोषधोपवास का ऋत और विधि—

जैसे जिसा मनुष्य को अष्टमो वा प्रोषधोपवास करना है तो वह सप्तमी और नवमी को एकवार भोजन करे तथा अष्टमो को भोजन का सर्वथा त्याग करे। इस समय पाँचों पाप, व्याहार, गृहकार्य, शृङ्गार, इत्र, तेल, अंजन, मन्त्र, मातुन, रेन और यात्रा का सर्वथा त्याग करे। अपना १६ पहर का समय पूजन, स्वाध्याय, सामायिक तथा धर्मचर्चा ही में व्यतीत करे। यह उत्तम प्रोषधोपवास की विधि है। मध्यम प्रोषधोपवास १२ पहर का और अधन्य ८ पहर का होता है। इस व्रत के समय यदि ऋषाय और त्रिषयसेवन की कमी न की गई तो इस व्रत से कुछ लाभ नहीं होता।

भोगापमागपरिमाणशिक्षात्रन का लक्षण —

भोजन, वस्त्र, आभूषण आदि भोगोपभोग की वस्तुओं का परिमाण कर वाली सबका जीवनपर्यन्त अथवा कुछ नियमित काल तक त्याग करना भोगोपभोगपरिमाणत्रन कहलाता है। इस व्रत में अभक्ष्य वस्तुओं का तो जीवनपर्यन्त के लिये त्याग

☉ जो वस्तु एकवार ही भोगने योग्य हातो हैं वह भोग कहलाती है। जैसे—रोटी, फूलमाला, पान इत्यादि। जो वस्तु बारबार काम में आ सकती हैं वह उपभोग कहलानी है। जैसे—वस्त्र, मन्त्र, सवारो आदि। जीवन पर्यन्त के लिये जो त्याग किया जाता है वह 'यम' कहलाता है और परिमित समय के लिये जो त्याग किया जाता है वह त्याग 'नियम' कहलाता है।

क्रिया जाता है और भक्ष्य वस्तुओं का घड़ी, घंटा, दिन, महिना, वर्ष वगैरह काल की मर्यादा लेकर या जीवनपयन के लिये त्याग किया जाता है।

इस ग्रन के घारी को भोजन, वाहन, शयन आदि १७ कार्यो का नियम प्रतिदिन प्रात ही अवश्य करना चाहिये। जैसे आज भोजन इतने बार करूँगा, रस इतने खाऊँगा आदि।

अतिथिसविभागशिक्षाग्रन का लक्षण—

फल की इच्छा के बिना भक्ति और आदर पूर्वक धर्म बुद्धि मे मुनि, त्यागी तथा अर्थ धर्मात्मा जनों को यथायोग्य दान देना + अतिथिसविभागशिक्षाग्रन कहलाता है। अतिथिसविभागग्रन के ४ भेद हैं—आहारदान, ज्ञानदान, औपधिदान और अभयदान।

१—आहारदान का लक्षण—मुनि, त्यागी, प्रता, भावक तथा भूखे अनाथ-विधवा-गरीब आदि को भोजन देना 'आहारदान' कहलाता है।

२—ज्ञानदान का लक्षण—पढ़ाना, व्याख्यान देना, पाठ शाला खोलना, राचनालय खोलना और पुस्तकें पढ़ाना वा वाटना आदि ज्ञानदान कहलाता है।

३—रोगिया का औपधि देना, उनकी परिचया करना तथा औपधालय खुलवाना आदि औपधिदान कहलाना है।

४—मठ या धर्मशाला बनवाना, सड़क पर लेम्प लगवाना, चौकी पहरा लगवाना, औरा का दुख व सन्त दूर करना तथा जीवों की रक्षा करना आदि अभयदान कहलाना है।

+ जा भिक्षा के लिये बिना किसी तिथि का निश्चय किये भ्रमण करते हैं उ-ह 'अतिथि' कहत है। अपने कुटुम्ब के लिये बनाये हुए भाजन में स भाग करके दान 'सविभाग' कहलाता है।

## प्रश्नावली



१—अग्निव्रत, अमुषदान, अमुक्त्रय, उपभोग, उपवास, गुणव्रत, नियम, प्रोषध, भोग, यम और शिज्ञाव्रत का लक्षण उदाहरण सहित बतलाइये ?

२—अग्निव्रत गुणव्रत, दान व्रत और शिज्ञाव्रत के भेद विनाइये ?

३—अग्निव्रत और महा व्रत में, परिमहपरिमाणव्रत का भोगोपभोगपरिमाणव्रत में, प्रोषध, उपवास और प्रोषधोपवास में दिग्ब्रत और देशव्रत में, नियम और यम में अन्तर उदाहरण सहित बतलाइये ?

४—अहिसाव्रत की युद्ध और खेता करेगा या नही ? मन्दिर, कुआँ और तालाब बतवावेगा या नहीं ?

५—एक दुष्टा स्त्री दुःखदात्री से मदा अपने स्वामी का दिल दुःखाती है तो वह कौनसा पाप करती है ?

६—मिथ्यात्व का नाश और दान का प्रचार करने के लिये अकलक ने आपत्ति आने पर भूठ गोल पर अपने प्राणों की रक्षा की तो उन्हें भूठ का पाप लगा या नहीं ?

७—अपराधी को निश्चित कसौ से बचाने के लिये भूठी गवाही दे देना अच्छा है या बुरा ?

८—स्त्री के पाम रूपया होने पर भी पति के द्वारा जुए को रूपया मागे जाने पर 'मेरे पास नहीं हैं' ऐसा कह देना पाप है या नहीं ? क्यों ?

९—सड़क पर पड़ा हुआ रूपया उठा कर भिक्षारी को दे देना पाप है या नहीं ?

१०—पंचव्रतों का पालन कौन प्रतिमाधारी है ?

११—बिना अग्निव्रत पालन किये गुणव्रत और शिज्ञाव्रत हो सकते हैं या नहीं ? क्यों ?

१२—शिज्ञाव्रत का पालन

# पाठ सातवा

## एकादश-प्रतिमा का वणन



प्रतिमा का लक्षण—

श्रावक के आचरण के ग्यारह दरजों (कक्षाओं, श्रेणियों) को प्रतिमा कहते हैं। अथवा भोगों से राग घटाना, सयम का बढाना और कर्त्तव्यपालन की प्रतिज्ञाएँ करना प्रतिमा कहलाता है। कविबर १० बनारसीदास जी ने कहा भी है कि—

सयम अशु जग्यो जहा, भोग अरुचि परिणाम ।  
उदय प्रतिमा को भयो, प्रतिमा ताको नाम ॥

पृष्ठ ५३ का प्रश्नावली का शेषभाग—

अशाश्र्वती है या नहीं ?

१३—एजिया, यूरोप, अमरीका, आस्ट्रेलिया और आफ्रीका स बाहर न जान का नियम कर लेना दिग्गत है या नहीं ? क्यों ?

१४—जिनमें युद्ध और जीवदिसा का कथा है उसी पुस्तक अनथदण्डप्रतवारी पठेगा और सुनेगा या नहीं, क्या ?

१५—सामायिक कथ,

कहाँ वा कैसे करना चाहिये और उस समय क्या विचार करना चाहिये ?

१६—प्रोपबोपवास के दिन क्या करना चाहिये ?

१७—छपा पुस्तकें बाटना, अम्रेजी और शिल्पशिक्षा के लिये छात्रशुक्ति देना ज्ञानदान है या नहीं ?

१८—एक पण्डित जी बिना कुछ लिये दिये पढ़ाते हैं तो उनके कौनसा प्रत हुआ ?

प्रतिमा के भेद या नाम—

दर्शन, व्रत सामायिक प्रोषण, भुक्ति मचित्त रात्रि परिहार ।  
 प्रद्वचय आरम्भत्याग वा नवम परिग्रह त्याग विचार ॥  
 अनुमत्तित्याग उद्दिष्टत्याग कहि, प्रतिमा ग्यारह श्रीगणधार ।  
 अगली प्रतिमा में पूरव की, गुटी रह्य ना होय चितार ॥

नोट —श्रावक अपने समय की उत्रात करता हुआ पहिली से दूसरी, दूसरी से तीसरी और तीसरी से चौथी इस प्रकार ग्यारहवीं × प्रतिमा तक चढ़ता है । इससे ऊपर चढ कर साधु अथवा मुनि हो जाता है । अगली अगली प्रतिमाआम पहिले की प्रतिमाओं की क्रिया का पालना भी जरूरी है ।

दशानप्रतिमा का लक्षण—

अष्ट मूलगुण सप्रह करै, व्यमन अमक्ष्य सबै परिहरै ।  
 युत अष्टांग शुद्ध मय्यक्त्व, धरहिं प्रतिज्ञा दर्शनरक्त ॥१॥

निर्मल सम्यग्दर्शन सहित निरतिचार आठ मूलगुणों का पालन करना, सात यमों का अतिचारसहित त्याग करना और अहिंसा आदि पाँच अणुव्रतों का अभ्यासमात्र करना 'दर्शन—प्रतिमा' कहलाती है । इस प्रतिमा का धारक 'दाशनिक श्रावक' कहलाता है । वह सदा ससार, शरीर वा भोगा में जग

× प्रतिमा शब्द से यहाँ त्रिनमन्दिर मं त्रिराजमान अरिहन्त आदि की मूर्ति नहीं लेना किन्तु श्रावक के नियम या व्रतपालन की भिन्न भिन्न अवस्था या कक्षा समझना चाहिये ।

कोइ कोइ श्रावक ऐसे भी होते हैं कि जो व्रतप्रतिमा धारण कर गृह छोड़ बिचरते हुए धर्मसाधन में तत्पर रहते हैं वे व्रत प्रतिमावारी गृहत्यागी कहलाते हैं ।

सीन, दृढ़ निश्चय ( भ्रद्धान ) वाला और सामारिफफल की इच्छारहित होता है। तथा अपने सम्यक्त्व में दोष नहीं लगाता।

व्रतप्रतिमा का लक्षण—

अणुव्रत पन अतिचार विहीन, धारहिं जो पुन गुणव्रत तीन।  
चौ शिक्षाव्रत समुत सोय, व्रतप्रतिमाधर श्रावक दोय ॥२॥

पाच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत इन १२ व्रतों का पालन करना व्रतप्रतिमा कहलाती है। इस प्रतिमा का धारी व्रतो श्रावक कहलाता है। इस प्रतिमा में अतिचार केवल अणुव्रतों के ही टलने हैं। शेष सात व्रतों का अभ्यास-मात्र होना है।

सामायिकप्रतिमा का लक्षण—

मद्व जीव में ममभाव धर, शुभभावना समय मही।  
दुर्ध्यान आरत रौद्र तज कर, त्रिविध काल प्रमानही ॥  
परमेषिठ पन जिन वचन जिनवृष, बिंबजिन जिनगृह तनी।  
वदन त्रिकाल करै सुजानहु, भव्य मायिक धनी ॥३॥

प्रतिदिन सारे, दोपहर और शाम को कम से कम दो दो घड़ा विधिपूर्वक अतिचार रहित सामायिक करना सामायिक प्रतिमा कहलाती है। इस प्रतिमा का धारी किसी भी प्रकार के उपमग वा परुपह के आज्ञाने पर सामायिक से श्रुत नहीं होता। इस प्रतिमा का धारी 'सामायिकी' कहलाता है।

प्रोषधप्रतिमा का लक्षण—

वर मध्यम लघन त्रिविध धरेष, प्रोषधविधिपुन निजबल्प्रमेय।  
प्रतिमाप चार पर्वाँ मँहार, जानहु सो प्रोषध निरमधार ॥४॥

प्रत्येक अष्टमी वा चतुर्दशी को अतिचार रहित प्रोषधोपनाम करना और इस दिन व्यापार, आरम्भ, भोजन, स्नान आदि भोगोपभोग को सामग्री का त्याग कर एकन्त में स्वाध्याय वा धमध्यान करना प्रोषधप्रतिमा कहलाती है। यह प्रोषध ऋषुष्ट १६ पहर का, मध्यम २० पहर का और जघन्य २२ पहर का होता है। विशेष ऋषुष्ट न० ५१ पर लिखा है।

सचित्तत्यागप्रतिमा का लक्षण —

जो परिहरै सचित्त सब चीज पर प्रवाल क फल बीज ।  
अरु अप्रासुक नल भी सोय, सचित्तन्याग प्रतिमावर सोय ॥५

हरी वनस्पति अधान् कच्चे फल, फूज, बीज, पत्ते वगैरह नहीं खाना, पानी भी प्रासुक कर पीना, वनस्पति को + प्रासुक कर काम में लाना स्वच्छन्दता से हर एक वस्तु न खाना पीना × सचित्तत्यागप्रतिमा कहलाती है।

रात्रिभो वनत्यागप्रतिमा का लक्षण —

मन वच तन कृत कारित अनुमेदें नहीं,  
नवविध भंष्टुन दिवस मांहि जो वनेहि ।  
अरु चतुर्विध आहार निशामाहीं नञै,  
रात्रिभुक्तिपरित्यागप्रतिमा सो मजै ॥ ६ ॥

+ तीव्रमहित हरी वनस्पति को सचित्त कहते हैं। × इस प्रतिमाधारी ने सचित्त का अचित्त करने का त्याग नहीं होता। सचित्त को अचित्त करने की रीति यह है—मूली, पकी गम, सटाइ या नमक म मिली हुई तथा कुंठी और पिमी हुई वस्तु प्रासुक ( अचित्त ) हो जाती है। पानी में लवण आदि का चूर्ण डाल देने पर जध उमसा वर्ण और रस बदल जाता है तब यह भी प्रासुक ( अचित्त ) हो जाता है। बीज सचित्त होता है।



मन, वचन, काय और कृत, कारित, अनुमोदना से रात्रि म चारा प्रकार क आहार का सत्रथा त्याग करना \* रात्रिभोजन-त्यागप्रतिमा कहलाती है। इस प्रतिमा का धारी सूर्य छिपने के दो घड़ी पहिले से सूर्य निकलने के दो घड़ी याद तक भोजन नहीं कर सकता। कहीं कहीं इस प्रतिमा का नाम 'दिवामैथुनत्याग' (दिन म मैथुनत्याग करना) भी कहा है।

ब्रह्मचर्यप्रतिमा का लक्षण—

मैथुन नव सुख्य प्रभेद, सर्वप्रकार तर्ज निरखेद।  
नारिकथादिकु मी परिहरै, ब्रह्मचर्यप्रतिमा को धरै ॥७॥

मन, वचन, काय वा कृत, कारित, अनुमोदना से अपनी भी स्त्री का त्याग करना ब्रह्मचर्यप्रतिमा कहलाती है।

आरम्भत्यागप्रतिमा का लक्षण—

जो कछु अल्प बहुत अवकाश, गृहमन्बधी मो मध त्याज।  
निगारम्भ है वृपरत रहे, सो जिय अष्टम प्रतिमा वहे ॥८॥

हिमा के कारण-स्वरूप नौकरा, खेती, व्यापार आदि गृह-कार्य सम्बन्धी सभा तरह की नियात्रा का मन, वचन, काय और कृत कारित अनुमोदना से त्याग करना "आरम्भ-त्याग" प्रतिमा कहलाती है। इस प्रतिमा का धारी स्नान, दान और

---

\* मास-दोष का अपेक्षा दशमप्रतिमा म और त्रसहिंसा की अपेक्षा व्रतप्रतिमा में यद्यपि रात्रि में चारों प्रकार क आहारा का अतिधारसहित त्याग हो जाता है तथापि पुत्र पौत्रादि कुटुम्बा तथा अ-यजना के निमित्त से कृत, कारित, अनुमोदना सम्बन्धी जो दोष आते वे उनके यथावत् त्याग की प्रतिज्ञा यहाँ होता है।

पूजन कर मन्ता है। अथान् धर्मकार्य का आरम्भ कर सकता है। इस दर्जे का गृहस्थ घर में रह कर भी धर्म साधन कर सकता है और घर को छोड़ कर भी धर्मसाधन कर सकता है। जो बुलाता है उसके यहाँ भोजन कर आता है। चातुमास करना इसके लिये अत्रिनाय है।

परिमहत्यागप्रतिमा का लक्षण—

वस्त्रमात्र रख परिग्रह अन्न, त्याग करै जो व्रतमम्पन्न ।  
ताम पुनि मूच्छा परिहरै, नवमीप्रतिमा सो भवि धरै ॥६॥

धन, धान्य आदि दश प्रकार के बाह्य परिग्रह को पाप का कारण जान त्याग कर सन्तोष धारण करना परिमहत्यागप्रतिमा कहलाती है। इस प्रतिमा का धारी अपने लिये कुछ आवश्यक वस्त्र वा वतन रख लेता है। स्त्रियाँ पैसा नहीं रखती, घर का त्याग कर घमशाला आदि एकान्त स्थान में रहता है। द्रव्य में पूजन भी नहीं करता। भाजनशुद्धि का निश्चय रहने पर निमंत्रण स्वीकार करता है।

अनुमतित्यागप्रतिमा का लक्षण—

जो प्रमाण अधमय उपदेश, दय नहीं पर को लवलेश ।  
तसु अनुमोदन मी जो तर्ज, सो ही दशमीप्रतिमा सनै ॥

खेती, व्यापार, विवाह आदि गृहस्थी के किसी भी लौकिक कार्य में अनुमोदना या सम्मति नहीं देना अनुमतित्याग—

जान पड़ता है कि व्रतप्रतिमा से लेकर किसी भी प्रतिमा में गृहत्याग होने पर उसके कुटुम्बसम्बन्धी वृद्धि हानि का सूत्रा सूत्रक नहीं माना जाता, क्योंकि अब उसके कुटुम्ब सम्बन्ध नहीं रहा। जूता व छतरी का त्याग आठवीं प्रतिमा में होता है।

प्रतिमा कहलाती है। इस प्रतिमा का धारी भोजन के समय जो आवश्यक उसे अपने यहाँ भोजन को घुलाता है उसके यहाँ भोजन कर आता है। परन्तु यह नहीं फहता कि मेरे लिये अमुक भोजन घनाओ। उदासीन होकर प्रायः चैत्यालय या मठ आदि मरह कर धर्मध्यान में तत्पर रहता है।

उद्दिष्ट्यागप्रतिमा का लक्षण—

ग्यारम थान मेद हें दीप, इक छुल्लक एक ऐलक सोय ।  
 खण्डवस्त्र धर प्रथम सुजान, युत कौपीनहि दुतिय पिछान ॥  
 ये गृहस्थाग मुनिन टिंग रहें, वा मठ मन्दिर मं निवसहें ।  
 उतर उदण्ड उच्चि। आहार, कर्हि शुद्ध अ प्राय निवार ॥

घर छोड़कर बन या मठ में तपश्चरण करना, × सखडास्र या लंगोट धारण करना, बिना याचना किये भिक्षावृत्ति में योग्य आहार करना अपन निमित्त घनाया भोजन, पीछी, कमण्डलु वा बसतिफा नहीं लेना "उद्दिष्ट्यागप्रतिमा" कहलानी है। इस प्रतिमा के दो भेद हैं। १— छुल्लक और —ऐलक।

छुल्लक का लक्षण—

जो एर लंगोली वा ओछी चहर (खण्डवस्त्र) रखते हैं, माल फैचाया वस्त्र से बनवाते हैं, + पीछी और कमण्डलु रखते हैं, चया सं गृहस्थ के यहाँ बैठकर त्रिमी पात्र म भोजन करत हैं वे छल्लक कहलाते हैं।

× जिससे शिर ढक्ता है तो पैर नहीं ढक्ता और पैर ढक्ता तो शिर नहीं ढक्ता ऐसा वस्त्र 'सखडावस्त्र' कहलाता है।

+ कहीं कहीं कोमलवस्त्र रखने का भी विधान है। शुद्ध छल्लक लोहे का और उषवण वाले पीतल का पात्र रखते हैं।

ऐलक का लक्षण—

जो अपने केशों का लाल्य करते हैं, केवल लंगोटी, पीछी वा कमण्डलु रखते हैं। चया से जाकर गृहस्थ के यहाँ बैठकर अपने हाथ पर ही रखकर भोजन करते हैं और मुनिव्रत का अभ्यास करते हैं उन्हें ऐलक कहते हैं। ये ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्ण के ही होते हैं।

प्रतिमाधारी के गुणस्थान—

इमि सच प्रतिमा एकादश, 'दौल' देशव्रत थान ।

गडै अनुक्रम मूल सह, पालें भवि सुखदान ॥

ये ११ प्रतिमाएँ 'देशव्रत' नामक पंचम गुणस्थान में होती हैं। इनको क्रम से पालने वाला भव्य ररगादि का उत्तम सुख पाता है। इनमें से १ से ६ प्रतिमा वाले जघन्यश्रावक, ७ से ९ प्रतिमा वाले मध्यमश्रावक तथा १० वा ११ वीं प्रतिमा वाले उत्तम श्रावक कहलाते हैं।

प्रश्नावली

१—अमुरुप्रतिमा, एलक, छुल्लक, प्रतिमा और सच्चित्त का लक्षण कहिये ?

२—अतिम प्रतिमाधारी, प्रतिमा के भेद बतलाइये ?

३—प्रतिमाधारी के कौन सा गुणस्थान होता है ?

४—प्रतिमाया का धारण कौन, कब और क्यों करता है ?

५—किस प्रतिमा के पा

लन के लिये उममें पहिले की प्रतिमा का पालन करना आवश्यक है ?

६—श्रावक की प्रतिमा और भगवान् की प्रतिमा में क्या अन्तर है ? दोनों में कुछ सम्बन्ध है या नहीं ?

७—छामात्र के त्यागो, प्रोष धोषवासी, लौकिक कार्यों की अनुमति के त्याग और लंगोटी

के सिवाय सब परिवर्त के

के कौन कौन प्रतिमाएँ  
हैं ?

१—व्यापार, रेल की मुसा  
लन्दनयात्रा, मृत्यु का  
युद्ध, अध्यापकी, उद्यो  
सम्पादकी, बकानात,  
राज्य और न्याय करते  
कौनसी प्रतिमा का पालन  
करता है ?

२—पहली, सातवीं, नवमीं,  
ग्यारहवीं प्रतिमा का  
कौन कौन काम  
करता है ?

३—द्वितीय प्रतिमाधारी  
काम भोजन करेगा या  
नहीं ? यदि नहीं तो रात्रि  
व्रतत्याग छटवीं प्रतिमा  
करेगी ?

४—द्वितीय प्रतिमाधारी  
त्रिजाल सामयिक करना  
वश्यक है या नहीं ?

५—सामायिक की विधि  
क्या है ? सामायिक किस  
प्रतिमाधारी को अनिवार्य है ?

६—छटवीं प्रतिमा का  
नाम क्या है और

उससे आप क्या समझे हैं ।

१४—मन्त्रम प्रतिमाधारी  
स्त्रोसभा में भाषण देगा या  
नहीं ?

१५—अनुमति यागीनिम  
ग्रण मानेगा या नहीं ?

१६—अष्टम प्रतिमाधारी  
मंदिर बनवाने की सलाह देगा  
या नहीं ?

१७—अंतिम प्रतिमाधारी  
श्रावण है या मुनि ? उसके  
पाम कौन कौन वस्तुएँ होती  
हैं ? उसके अग्रगुण होते हैं  
या महाग्रन ?

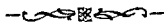
१८—अंतिम प्रतिमाधारी  
पाठशाला की स्थापना, पाठ  
शाला फेलिये चन्दा की अनु  
मोदना, रल घोड़ा गाडी में  
सजारी, शास्त्रयाचना, ग्रन्थ  
रचना और रोग की सूचना  
करेगा या नहीं ?

१९—प्रतिमाधारी जिन  
मंदिर रहित ग्राम में रहेगा ?

२०—एक ब्रह्मचारी प्रोप  
धोषवास नहीं करते तो उनके  
कौनसी प्रतिमा हो सकती है ?

# पाठ आठवां

## तत्त्वों और पदार्थों का वर्णन



### तत्त्व का लक्षण —

जिनके जानने या अद्वान करने में हमें अपने आत्मा के सन्चे हित का ज्ञान हो सक्ता है हम अपने आत्मा को परित्र कर सकते हैं उन वार्थों का, या वस्तु के स्वभाव को तत्त्व कहते हैं। तत्त्वों के भेद या नाम—

१-जीव, २-अजीव ३-आस्रव, ४-वध, ५-संवर, ६-निर्जरा और ७ मोक्ष ये सात तत्त्व हैं। इनमें पुण्य और पाप मिला देने के ६ पदार्थ हो जाते हैं।

### जीव और अजीव का लक्षण—

जिसमें भावप्राण और द्रव्यप्राण दोनों या कोइ एक पाया जाता है उसे जीव कहते हैं। जिसमें एक भी प्राण नहीं होता वह अजीव कहलाता है।

### जीवों के द्रव्यप्राणों का विवरण

जीव	इन्द्रियाँ	मल	आयु, स्वप्न, संवत्	संख्या
एकेन्द्रिय	स्पर्शन		५ य "	४
द्वीन्द्रिय	" रसज्ञा	वचन	" " "	६
त्रीन्द्रिय	" ग्राह्य	"	" " "	७
चतुरिन्द्रिय	" " चक्षु	"	" " "	८
पञ्चिन्द्रिय	असेनी	" कण	" " "	९
	सेनी	" मन	" " "	१०

प्राणों में भेद या विभाग—

ज्ञान और दर्शन या जानने और देखने की शक्ति ये ते भाव-  
प्राण हैं। तथा ५ इन्द्रियाँ, ३ धल (मनोबल, वचनबल, कायबल),  
आयु और स्वासोच्छ्वास ये १० द्रव्यप्राण हैं।

**आम्रव का लक्षण—**

राग द्वेष आदि भावों के कारण पुद्गल कर्मों का लिंच कर  
आत्मा की ओर आना आम्रव कहलाता है। जैसे किसी नाथ में  
छेद हो जाने पर पानी आने लगता है, वैसे ही आत्मा के शुभ  
अशुभ भाव होने पर पुद्गल कर्म लिंच कर आत्मा की ओर आते  
हैं। अथवा जिस प्रकार गरम लोहा पानी को रोक लेता है, वही  
प्रकार प्राणी अपने योग और भावों द्वारा कर्मों को अपनी ओर  
लींच लेता है। वही आम्रव कहलाता है।

**आम्रव के भेद या उनके लक्षण—**

आत्मा के तिन राग द्वेष आदि भावों से कर्म आत्मा की ओर  
आते हैं 'ग्न भावों को भाव आम्रव' कहते हैं। पुद्गलमय शुभ  
और अशुभ कर्म परमाणुओं का आत्मा की ओर लिंच कर  
आना 'द्रव्य आम्रव' कहलाता है।

**आम्रव के कारण—**

मिथ्यात्व, अनिरति, कषाय और योग इन चार मुख्य कारणों  
स ही कर्मों का आम्रव होता है। ये चार आम्रव के कारण हैं।

**मिथ्यात्व का लक्षण, कार्य या भेद—**

आत्मा में भिन्न सत्तार की वस्तुओं में राग द्वेष करना  
और शुद्ध आत्मा का अनुभव (निश्चय या अज्ञान) न होना  
मिथ्यात्व या मिथ्यादर्शन कहलाता है। या अतत्त्वब्रह्मज्ञान

होना अर्थात् यथार्थ तत्त्वा तथा उनके यथाथ स्वरूप से उल्टे अयथार्थ तत्त्वों पर तथा उनके अयथाथ स्वरूप पर विश्वास करना मिथ्यात्व कहलाता है। इस मिथ्यात्व के कारण ससारो प्राणी के अनेक प्रकार के सकल्प विफल हुआ करते हैं और शान्तस्वभाव का नाश हो जाता है इसी से यह कर्मों के आस्रव का कारण है। एकान्त, विपरीत, विनय, सशय और आह्वान ये ५ मिथ्यात्व × के भेद हैं।

### अविरति का लक्षण वा भेद—

आत्मा का अपने शुद्ध चिदानन्दमय स्वभाव में विमुख होकर बाहिरा अय विषयो में लगना अविरति कहलाती है। पाचों इन्द्रिया और मन को यश म नहा रखना तथा छह काय क जीवा की हिंसा करना ये १० अविरति के भेद हैं।

× १—वस्तु में रहने वाले अनेक गुण या धर्मों का लक्षण रख उमर का ही रूप श्रद्धान करना एकान्त मिथ्यात्व कहलाता है। २—वस्तु के असली स्वरूप को न जान कर उठा श्रद्धान करना विपरीत मिथ्यात्व कहलाता है। ३—सुगुरु सुदेव सुधर्म, या कुगुरु कुदेव कुधर्म इन सब को एक सदृश मानना—पूजना या सच्च तत्त्वों वा भूठे तत्त्वों को एकमा ममकता, दोना को एकसो महत्त्व की दृष्टि से देखना वा सभी मतों का एकरूप मानना विनय मिथ्यात्व कहलाता है। ४—किसी वस्तु के स्वरूप का ठीक-ठीक निर्णय न होना, यह वस्तु ऐसी है या नहीं? कौन मत्स्य है कौन असत्स्य? इस प्रकार भ्रम बना रहना मशय मिथ्यात्व कहलाता है। ५—हित अहित की परीक्षा किये बिना हा श्रद्धान करना और विप्रेकरहित रहना अज्ञान-मिथ्यात्व कहलाता है।



नोट — कर्मायों के लक्षण या २५ भेद तथा भेदों के लक्षण इमी पुस्तक के दशवें पाठ में लिखे हैं। इन कर्मायाम भी कर्मों का आस्रव होता है।

योग का लक्षण—

मन म कुछ विचारने, जिह्वा से कुछ बोलने और शरीर से कोई काम करने से मन, जिह्वा और शरीर का हलन चलन होना × और मन आदि के हलन चलन से उनमें रहने वाले आत्मा का हलन चलन होना † योग कहलाता है। आत्मा में हलन चलन होने से भी कर्मों का आस्रव होता है।

योग के भेद वा प्रभेद—

योग के द्रव्ययोग और भावयोग ये दो भेद हैं। अथवा मनो योग, वचनयोग और काययोग ये तीन भेद भी हैं। योग के विशेष भेद १५ पंद्रह हैं—

सत्यमनोयोग, असत्यमनोयोग, उभयमनोयोग, अनुभव मनोयोग, औदारिककाययोग, औदारिकमिश्रकाययोग, वैकियिक काययोग, वैकियिकमिश्रकाययोग, आहारकाययोग, आहारक मिश्रकाययोग, कार्माणयोग, सत्यवचनयोग, असत्यवचनयोग, उभयवचनयोग और अनुभववचनयोग ये १५ योग के भेद हैं।

आस्रव के ५७ कारण या भेद—

५ मिध्यात्न, १२ अचिरति, २५ कर्माय और १५ योग कुल मिलाकर आस्रव के भेद या कारण ५७ होते हैं।

⊗ जो आत्मा के गुण का घात करता है अथवा जिससे आत्मा विभावरूप होकर बंध अवस्था को प्राप्त होता है उसे कर्माय कहते हैं।

× यह द्रव्ययोग का लक्षण है।

† यह भावयोग का लक्षण है।

## बन्ध का लक्षण—

राग द्वेष के निमित्त से आये हुए शुभ और अशुभ पुद्गल कर्मों का आत्मा के साथ दूध और जल के समान मिल कर एक भेक हो जाना बन्ध कहलाता है। नेत्र नाभ में छेद के द्वारा पानी आकर नाभ में इकट्ठा हो जाता है वैसे ही कम आकर आत्मा के साथ बंध जाते हैं।

बन्ध के भेद या उनके लक्षण—

भाव्य व आर द्रव्यबन्ध ये दो बन्ध के भेद हैं। आत्मा ने तिन शुभ या अशुभ भावों से कम का बन्ध होता है उन भावों को भावबन्ध कहते हैं। तथा शुभ या अशुभ भावा के कारण जो कर्म परमाणु आत्मा के प्रदेशों के साथ दूध और पानी के समान एकमेक होकर मिल जाते हैं उन्हें द्रव्यबन्ध कहते हैं।

बन्ध का दृष्टान्त—

जैसे धूलि उड़ कर गाले कपडे म लग ( चिपक ) जाती है, वसी एकार मिथ्यात्व आदि परिणामों से कर्म आते हैं और वे आत्मा के प्रदेशों के साथ मिल जाते हैं।

बन्ध के कारण—

आत्मव ओर बन्ध यद्यपि साथ साथ एक ही समय म होता है तो भी इनमें कार्यकारण-भाव है। आत्मव कारण है, और बन्ध काय है। इसलिये चितने आत्मव हैं, व सभी बन्ध के कारण हैं।

## सवर का लक्षण—

आत्मव का न होना अर्थात् आने हुये कमा का रुकना सवर कहलाता है। जैसे चिस छेद से नाब में पानी आता है,

उस छेद म डाट लगाकर पानी आना बन्द कर दिया जाता है, वैसे ही शुभ और अशुभ परिणामों द्वारा आने वाले कर्म शुद्ध भावों से रोक दिये जाते हैं। वही सवर कहलाता है।

सवर के भेद और उनके लक्षण—

भावसवर और द्रव्यसवर ये दो सवर क भेद हैं। जिन परिणामों से कर्मा का आना रुकता है, वे परिणाम भावसवर कहलाते हैं। तथा भावसवर के द्वारा पुद्गलपरमाणुआ का कर्म-रूप होकर आत्मा की ओर न आना द्रव्यसवर कहलाता है।

सवर के कारण—

३ गुप्ति, ५ समिति, १० धर्म, १२ अनुप्रज्ञा ( भावना ), २० परीपहजय और ५ चारित्र \* ये ५७ सवर क मुख्यकारण हैं। इनमें से गुप्ति, समिति और धर्म का वर्णन पंचपरमेष्ठी के मूलगुणों में इसी पुस्तक के पृष्ठ न० २५, २२, ३० में है। अनुप्रज्ञाओं ( भावनाओं ) का वर्णन इसी पुस्तक के द्वितीय भाग के द्वितीय पाठ में किया गया है। और परीपहजयों का वर्णन इसी पुस्तक में आगे पृष्ठ ७३ पर देखिये।

चारित्र का लक्षण वा भेद—

आत्म स्वरूप म स्थिर होना चारित्र कहलाता है। इसके सामायिक और छेदोपस्थापना आदि ५ भेद हैं।

\* मद्य जात्रा पर समताभाव रखना, सुग दुग में समान रहना तथा शुभ और अशुभ विकल्पों का त्याग करना सामायिक चारित्र कहलाता है। २—सामायिक चारित्र से छिग जाने पर अपने को शुद्ध आत्मा के अनुभव में फिर लगाना तथा व्रत आदिक भंग हो जाने पर प्रायश्चित्त आदि लेकर फिर साधन होना छेदोपस्थापना चारित्र कहलाता है। ३—राग द्वेष आदिक

## निर्जरा का लक्षण—

आत्मा के साथ बँधे हुए कर्मों का थोड़ा थोड़ा भाग छ्य होजाना निर्जरा कहलाती है। जैसे नाव में छिद्र के द्वारा आकर जो पानी भर जाता है वह थोड़ा थोड़ा करके बाहर निकाल दिया जाता है वैसे ही आत्मा के साथ बँधे हुए कर्मों को धीरे धीरे तपश्चरण द्वारा या उनकी स्थिति की पूँजता द्वारा आत्मा से जुदा कर दिया जाता है वही निर्जरा है।

निर्जरा के भेद और उनके लक्षण—

भावनिजरा और द्रव्यनिजरा ये दो निर्जरा के भेद हैं। आत्मा के जिस परिणाम (भावन) से पुद्गलकर्म अपना फल देकर या विना फल दिये नष्ट हो जाता है उस परिणाम को भावन निर्जरा कहते हैं। और कर्मरूप पुद्गला का समय पाकर या तपश्चरण द्वारा आत्मा से अलग होने की द्रव्यनिजरा कहते हैं। +

त्रिकल्पा का त्याग कर अत्रिफला के साथ आत्मशुद्धि करना परिहार त्रिशुद्धिचारित्र कहलाता है।

१—अपने आत्मा को कषाय से रहित करते करते सूक्ष्म लोभ कषाय नाममात्र से रह जाता सूक्ष्म साम्प्राय कहलाता है। नाममात्र रहे सूक्ष्मलाम कषाय को भी दूर करने की कोशिश करना सूक्ष्मसाम्प्रायचारित्र कहलाता है। २—आत्मा को जैसा कषायरहित निरुक्त्य शुद्ध स्वभाव है वैसा हाकर असम भग्न होना यथास्थान चारित्र कहलाता है।

+ फल देकर अपनी स्थिति पूर्ण होने पर कर्मों का आत्मा से स्वयमेव जुदा होना सविपाक निर्जरा कहलाती है। तथा स्थिति पूर्ण हुए विना ही तप करके किसी कर्म का आत्मा से जुदा कर देना अविपाकनिजरा कहलाती है।

## मोक्ष का लक्षण—

ज्ञानावरण आदिक आठ कर्मों का क्षय हाकर आत्मा का सर्वथा शुद्ध हो जाना मोक्ष कहलाता है। जैसे किसी नाथ के आँदर भरा हुआ सव पानी मिलकुल निकाल कर नाथ को साफ कर दिया जाता है उसी प्रकार सत्र पृथक् निर्बरा होते होते जब सव कर्मों का क्षय हो जाता है और केवल आत्मा का शुद्ध स्वरूप रह जाना है तभी यह आत्मा उध्गमन स्वभाव होने से तीनों लोकोँ के ऊपर जा बिराजमान होता है, इमा का नाम मोक्ष है।

मोक्ष के भेद और उनके लक्षण—

द्रव्यमोक्ष और भावमोक्ष ये दो मोक्ष के भेद हैं। आत्मा का जो शुद्ध परिमाण समस्त पुद्गल कर्म के तारा का कारण होता है, वह परिणाम भावमोक्ष कहलाता है। द्रव्यरमा का आत्मा से सर्वथा दूर हो जाना द्रव्यमोक्ष कहलाता है।

## पदार्थ का लक्षण और भेद—

जिसम तत्त्व पाया जाता है उस पदार्थ कहते हैं। सात तत्त्व और पुण्य तथा पाप मिला कर ९ पदार्थ होते हैं।

पुण्य का लक्षण और दृष्टान्त—

जिसके उदय से प्रार्थना की इष्टवस्तु तथा सुखदायक सामग्री प्राप्त होता है, उसे पुण्य कहते हैं। जैसे—सुपुत्र की प्राप्ति, व्यापार म लाभ और उच्चपद की प्राप्ति ये सब पुण्य न उदय से होते हैं।

पुण्यव्यय के कारण—

धर्मपालन करना, पूजन करना, दान देना शिक्षाप्रचार और परोपकार करना आदि शुभ ( अच्छे ) कार्या स पुण्य का बन्ध होता है।

पाप का लक्षण और दृष्टान्त—

निमग्न उदय से प्राणी को अनिष्टवस्तु और दुःखदायक सामग्री प्राप्त होती है उसे पाप कहते हैं। जैसे—पुत्र मर जाना, घाटा पड़ जाना, चोरी हो जाना और रोग हो जाना आदि। ये सब पाप के उदय से होते हैं।

पापग्रह के कारण—

हिंसा करना, भ्रूट घोलना, चोरी करना, परनिन्दा करना, किसी का बुरा विचारना और जुआ खेजना आदि सरास कार्यों के करने से पाप का उदय होता है।

प्रश्नावली—

१—अज्ञान, अज्ञान, अनुप्रेक्षा, अनिरति, आस्रव, एकाग्र, मिथ्यात्व, कपाय कुनय मिथ्यात्व, गुप्ति चारित्र, छेदोपस्थापनाचारित्र, तत्त्व, पदार्थ, परिहारचारित्र, पाप, पुण्य, प्राण, विपरीतमिथ्यात्व, विनयमिथ्यात्व, मिथ्यात्व, मोक्ष, यथारथाचारित्र, योग, समिति, सामायिकचारित्र, मूढमसाम्परायचारित्र और मशयमिथ्यात्व का लक्षण कहिये ?

२—अजीव, अनुप्रेक्षा, अनिरति, आस्रव, कपाय, गुप्ति, चारित्र, तत्त्व, निर्जरा, पदार्थ, प्राण, प्राणरहित

पदार्थ, घन्ध, मिथ्यात्व, माल, योग, समिति और सबर के भेद बतलाइये ?

३—असैनी, चीनी ति यच, देव, नारकी, पचेन्द्रिय, वृक्ष, मक्खन शरकर और हाथ क कौन कौन प्राण होते हैं ?

४—प्राणरहित वस्तुआ या तत्त्वों के नाम कहिये ?

५—ऐसा कौन जात है जिममें द्रव्यप्राण एक भी नहीं होता ?

६—जावतत्त्व का और तत्त्वों से कौनसा सम्बन्ध ? और कब से ? कब तक है ?

७—किस हालत में आस्रव और बन्ध नहीं होते केवल निजरा होती है ?

८—पहिले आस्रव होता है या बन्ध ?

९—भानास्रव और द्रव्यास्रव में, भावनिर्जरा और द्रव्यनिर्जरा में, निर्जरा और मोक्ष में क्या अन्तर है, उदाहरण देकर प्रतलाइये ?

१०—जहाँ भानास्रव होता है वहाँ द्रव्यास्रव होता है या नहीं ?

११—बन्ध के कारण कौन कौन हैं ? ऐसे कौन कौन

१७—पाठशाला, अनाथालय, औपघालय, महिलाश्रम गुलवाने, छात्रवृत्ति देने, स्त्रियाँ को पढ़ाने, सत्तान को न पढ़ाने, भक्तिपूर्वक पूजा स्तुति करना, मंदिर हाने में उर्दी को व्यवस्था न होने पर भी अपने नाम को नया मंदिर बनवाने, धर्मादा करणों का दुरुपयोग करने, मंदिरों का पैसा न देने, गुप्त दान वा धर्म करने हिमकों में धर्म की पुस्तकें बाँटने, निधनों का महायत्न करने, हिमकों से नाता रखने, बेटी बेच कर पूजा प्रतिष्ठा कराने, छोटा उमर में सत्तान का विवाह करने, स्त्रियाँ स्त्रैर अयोग्य वर से विवाह करने, धर्म के लिये भूट बालने, भूटी हों में हों मिलाने, उल्टा अर्थ समझा देने, पिता को न देने पर पुस्तक के पैसा चुराने, अपने निये भीतर माँगने और धर्मकाय को रिशवत लेने आदि से पुण्य होता है या पाप ?

कारण हैं जिनसे बन्ध नहीं होता ?

१२—बन्ध जो सुना जाता है वह किस वस्तु का होता है ?

१३—जैनसा चारित्र हाने पर आस्रव और बन्ध नहीं होते ?

१४—पहिले निर्जरा होती है या मोक्ष ?

१५—किन किन कार्यों के करने से पुण्य और पाप होता है ?

१६—पुण्यपाप को उदाहरण देकर समझाइये ?

# पाठ नरमां

## वाङ्म-परीपहो का वर्णन



परीपह का लक्षण—

उपन्न दुई भूख-आदि की वेदना को कमों की निर्मल और कायक्लेश करने के लिये शांत भावों में सह लेना परीपह कहलाती है। परीपह के भेद—छुपा, तृषा, शीत लग्ग, दशमशक, नाग्य, अरति, खी, चया, निष्या, शय्या, आक्रोश, वध, याचना, अलाभ, रोग, कृष्णशी, मल, सत्कारपुरस्कार, प्रज्ञा, अज्ञान और अदशन ये चाइस परीपह हैं।

१-छुपापरीपह का लक्षण—छुपा ( भूख ) के दुख को शान्त-भाव में सह लेना छुपापरीपह कहलाती है।

२-तृषापरीपह का लक्षण—तृषा ( प्यास ) के दुख को शांतभाव में सह लेना तृषापरीपह कहलाती है।

३-शीतपरीपह का लक्षण—शीत ( शर्दी, जाड़े ) का दुख शांतभाव में सह लेना शीतपरीपह कहलाता है।

४-लग्गपरीपह का लक्षण—लग्ग ( गर्मी ) का दुख शांतभाव में सह लेना लग्गपरीपह कहलाती है।

५ दशमशकपरीपह का लक्षण—हास, मच्छर, विन्दू, जानसचूरा, बिजनी आदि के काटने में उत्पन्न दुख को शान्त भाव में सह लेना दशमशकपरीपह कहलाती है।

६-नाग्यपरीपह का लक्षण—

बन्धव्यागी होने सनग्न रहने पर भी मन में किसी प्रकार का विचार नहीं करना नाग्यपरीपह कहलाती है।

७-अरतिपरीपह का लक्षण—

शुष्ट और अनिष्ट पदार्थों में राग द्वेष नहीं करना, समताभाव धारण करना अरतिपरीपह कहलाती है।



## प्रश्नावली—

१—परीपट्ट में आप क्या समझते हैं ?

२—अमुक परीपट्ट का लक्षण प्रतलाइये ?

३—परापट्टा के नाम या भेद बतलाइये ?

४—परीपट्ट कौन क्यों सहन करते हैं ? उनके सहने से क्या लाभ होता है ?

५—ऐसा चीज धताओ जिसको परीपट्ट सहने की जरूरत हा नहीं होती ?

६—एक समय में एक ही परीपट्ट होती है या ज्यादा ?

७—द्वीपायनने क्रुद्ध होकर कौन परीपट्ट नहीं चीती थी ?

८—ऐसी कौन परीपट्टें हैं जो परस्पर तिरस्त्र हैं ?

९—अरिहंत क कितना परीपट्ट होती हैं ? उनसे उ हैं दुःख होता है या नहीं ?

१०—निम्न प्रश्नों में कौन कौन परीपट्टें सहन की गई हैं ?

क—सुकुमाल का आधा शरीर स्यालनी न स्यालिया पर व ध्यानास्तु ही रहे ।

ख—एक साधु ने भयङ्कर रोग हो जाने पर भा दया न मागा ।

ग—राजा श्रेणिक ने एक मुनिराज के गले में मरा सर्प डाला परन्तु उ-शने आशीर्वाद ही दिया ।

घ—एक मुनि जेठ की दुपहरी में पर्वत पर ध्यान लगाये रहे, गर्मी की पर्वाह नहीं की ।

च—स्वर्ग में आकर सीता के जीव ने ध्यानस्तु राम को अपने हाथमात्र में मोहित करने की काशिश की परन्तु व विचलित न हुये ।

छ—कुछ उपद्रविया ने एक वक्त-यशोल साधु पर पत्थर फेंक और गालियाँ दी परन्तु वे क्रुद्ध नहीं हुये ।

# पाठ दशवां

## कर्मों के उत्तर भेद या प्रकृतियों



ज्ञानावरणकर्म की	५	दशनावरणकर्म की	६
वेदनीयकर्म की	२	मोहनीयकर्म की	२०
आयुर्कर्म की	४	नामकर्म की	६३
गोत्रकर्म की	०	अंतरायकर्म की	५

इस प्रकार सब मिलान्तर कर्मों की उत्तर प्रकृतियों या उत्तर भेद १४० एकसौ अड़तालास हैं।

### ज्ञानावरणकर्म की उत्तर प्रकृतियों या भेद

मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अधिज्ञानावरण, मन-पययज्ञानावरण और क्लृप्तज्ञानावरण ये ५ ज्ञानावरणकर्म के भेद या प्रकृतियाँ हैं।

मतिज्ञानावरणकर्म का लक्षण—

१-जिस कर्म के उदय से मतिज्ञान का आवरण × या घात होता है उसे मतिज्ञानावरण कहते हैं।

२-श्रुतज्ञानावरणकर्म का लक्षण—जिस कर्म के उदय से श्रुतज्ञान का आवरण या घात होता है उसे श्रुतज्ञानावरण कहते हैं।

× आवरण = आढ, घात या परदा। \* यद्यपि मतिज्ञानावरण और श्रुतज्ञानावरणकर्म के स्थिति लक्ष्योपशम से थोड़ा बहुत ज्ञान सभी प्राणियों के होता है, परन्तु शेष सब ज्ञानों को पाँचा ज्ञानावरण कर्म न्यूनाधिकरूप से ढाँके रहते हैं।

३-अवधिज्ञानावरण कर्म का लक्षण—जिसे कर्म के उदय से अवधिज्ञान का आवरण या घात होता है उसे अवधिज्ञानावरण कहते हैं।

४ मन पर्ययज्ञानावरणकर्म का लक्षण—जिस कर्म के उदय से मन पर्ययज्ञान का आवरण या घात होता है उसे मन पर्ययज्ञानावरण कहते हैं।

५-केवलज्ञानावरणकर्म का लक्षण—जिस कर्म के उदय से केवलज्ञान का आवरण या घात होता है या सर्वज्ञता प्राप्त नहीं होती उसे केवलज्ञानावरण कहते हैं।

## दर्शनावरणकर्म की उत्तरप्रकृतियों या भेद

चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण, क्वलदर्शनावरण, निद्रा निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचनाप्रचला और स्त्यानगृद्धि ये ६ दर्शनावरण कर्म की प्रकृतियों या भेद हैं।

१-चक्षुदर्शनावरण का लक्षण—जिस कर्म के उदय से चक्षु द्वारा होने वाले सामान्य अवलोकन का घात होता है या अधा, फाना या दृष्टिहीन होता है उसे चक्षुदर्शनावरण कहते हैं।

२-अचक्षुदर्शनावरण का लक्षण—जिस कर्म के उदय से चक्षु के मियाय अथवा चार इन्द्रिया या मन द्वारा होने वाले सामान्य अवलोकन का घात होता है या पहिरा या गूँगा होता है उसे अचक्षुदर्शनावरण कहते हैं।

३-अवधिदर्शनावरण का लक्षण—जिस कर्म के उदय से अवधिदर्शन का घात होता है उसे अवधिदर्शनावरण कहते हैं।

४-केवलदर्शनावरण का लक्षण—जिस कर्म के उदय से केवलदर्शन अर्थात् सर्वदर्शीपने का घात होता है उसे केवलदर्शनावरण कहते हैं।

५-निद्रादर्शनावरण का लक्षण—जिस कर्म के उदय से निद्रा ( नींद ) आती है उसे निद्रादर्शनावरण कहते हैं ।

६-निद्रानिद्रादर्शनावरण का लक्षण—जिस कर्म के उदय से नींद के बाद फिर नींद ( गाढनींद ) आती है, आँसू भा नहीं सोल सकता उसे निद्रानिद्रादर्शनावरण कहते हैं ।

७-प्रचलादर्शनावरण का लक्षण—जिस कर्म के उदय से प्राणी कुछ चागता है और कुछ सोता है उसे प्रचला कहते हैं ।

८-प्रचलाप्रचलादर्शनावरण का लक्षण—जिस कर्म के उदय से सोते समय मुख के चार घबहती है, कुछ अङ्गोपाङ्ग भी चलते हैं और सुइ आदि शुभाने पर भी चेत नहीं होता उसे प्रचलाप्रचला कहते हैं ।

९-स्थानगृद्धिदर्शनावरण का लक्षण—जिस कर्म के उदय से प्राणी सोते समय नाना प्रकार के रीढ़ कार्य कर डालता है और जागने पर मालूम भी नहीं रहता कि मैंने क्या किया उसे स्थानगृद्धि कहते हैं । इसके उदय से प्राणी सोते ही गाय जाकर आजाता है । नाचने, गाने, दौडने और मारने लगता है ।

## वेदनीयकर्म की प्रकृतियों या भेद—

मातावेदनीय और असातावेदनीय ये दो वेदनीय कर्म की प्रकृतियों या भेद हैं ।

ध्रुतदर्शन और मनःपयथदर्शन न माने का कारण—

१—ध्रुतज्ञान, मतिज्ञान या श्रुतज्ञान के ही पश्चात् होता है उसके पेश्वर दर्शन नही होता इसलिये ध्रुतदर्शन नहीं माना गया है । २—मनःपयथज्ञान भी इहामतिज्ञान के ही पश्चात् होता है इससे इसके पूर दर्शनावयोग नहीं होता इसलिये माःपयथदर्शन नहीं माना गया ।

१-सातावेदनीयकर्म का लक्षण—जिस कर्म के उदय से शारीरिक और मासिक आदि अनेक प्रकार सुख सामग्री या सुख की प्राप्ति होती है उसे साता वेदनीयकर्म कहते हैं।

२-असातावेदनीयकर्म का लक्षण—जिस कर्म के उदय से दुःखदायक सामग्री या दुःख का प्राप्ति होती है उसे असाता-वेदनीयकर्म कहते हैं।

## मोहनीयकर्म की प्रकृतियाँ या भेद—

दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनाय ये दो मोहनीयकर्म के भेद या प्रकृतियाँ हैं।

दर्शनमोहनीय का लक्षण—जिस कर्म के उदय से आत्मा के सम्यक्त्वगुण का घात होता है उसे दर्शनमोहनीय कहते हैं।

दर्शनमोहनीय के भेद—मिथ्यात्व प्रकृति, सम्यक् मिथ्यात्व प्रकृति और सम्यक्त्व प्रकृति ये तीन दर्शनमोहनीय के भेद हैं।

१-मिथ्यात्वप्रकृति का लक्षण—जिस कर्म के उदय से सर्वज्ञभाषितमार्ग से विमुखता, तत्त्वार्थश्रद्धान में अनुरसाह और हित अहित की परीक्षा में असमथता होती है उसे मिथ्यात्वप्रकृति कहते हैं।

२-सम्यक् मिथ्यात्वप्रकृति का लक्षण—जिस कर्म के उदय से दही और गुड़ के मिले हुये स्वाद क ममान तत्त्वा के श्रद्धान और अश्रद्धान रूप मिले हुए भाव होते हैं उसे सम्यक् मिथ्यात्व कहते हैं।

३-सम्यक्त्वप्रकृति का लक्षण—जिस कर्म के उदय से यथार्थ तत्त्वा का श्रद्धान चल, मलिन और अगाढ़ नामक दाया से दूषित होता है उसे सम्यक्त्वप्रकृति कहते हैं।

चारित्रमोहनीय का लक्षण—जिस कर्म के उदय से आत्मा के चारित्रगुण का घात होता है उसे चारित्रमोहनीय कहते हैं।

चारप्रमोहनीय क भेद—कपायमोहनीय और अकपाय-मोहनीय ये दो चारिप्रमोहनीय क भेद हैं।

कपायमोहनीय का लक्षण—जो आत्मा के ज्ञानादिगुण, शुद्ध या शुभ भाव, धर्मक्षेत्र और उत्तमक्षमादि वर्म को कृश या नष्ट करता है उसे कपायमोहनीय कहते हैं।

कपायमोहनीय के भेद—अनन्तानुग्रही, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और सम्बलन ये ४ कपायमोहनीय के भेद हैं। इनमें भी प्रत्येक के मोह, मान, माया, लोभ ये ४४ भेद हैं। इस प्रकार कपायमोहनीय के १६ भेद हो जाते हैं।

अनन्तानुग्रही कपाय का लक्षण—जो कपाय आत्मा क सम्यक्त्व तथा स्वरूपाचरणचारित्र गुण का धात करता है और मिथ्यात्व को मद्द देता है उसे अनन्तानुग्रहीकपाय कहते हैं।

अप्रत्याख्यानान्तरण कपाय का लक्षण—जिस कपाय के उदय से जीव के परिणाम देशचारित्र (आयु के चारित्र) धारण करने योग्य नहीं होते उस अप्रत्याख्यानान्तरणकपाय कहते हैं।

प्रत्याख्यानान्तरणकपाय का लक्षण—जिस कपाय के उदय से जीव क परिणाम सफलचारित्र या मुनित्रय धारण करने योग्य नहीं होते उसे प्रत्याख्यानान्तरणकपाय कहते हैं।

सम्बलनरूपाय का लक्षण—जो कपाय आत्मा क यथा रथातचारित्र का धात करता है, समय क साथ जगमगाता रहता है या प्रमादादि दोषा द्वारा आत्मपरिणाम को जलाता है उस सम्बलनरूपाय कहते हैं।

अरूपायमोहनीय का लक्षण—किंचिनरूपाय या इपत् कपाय को अथवा जा कपाय के साथ अपना कार्य या फल दिखलाता है उसे अरूपाय मोहनीय कहते हैं। इनक उदय से पर पदार्था में विशेष रागभाव हाता है।

अकपायमोहनीय के भेद—हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद पुंस्त्ववेद और नपु सकवेद ये ६ अकपायमोहनीय के भेद हैं।

२०—हास्यप्रकृति का लक्षण—जिस कर्म के उदय से अपने को हँसी आती है उसे हास्यप्रकृति कहते हैं।

२१—रतिप्रकृति का लक्षण—जिस कर्म के उदय से इन्द्रियों के विषयों में अपना राग या प्रेम होता उसे रतिप्रकृति कहते हैं।

२२—अरतिप्रकृति का लक्षण—जिस कर्म के उदय से इन्द्रियों के विषयों में अपने को अरति या द्वेष होता है उसे अरति प्रकृति कहते हैं।

२३—शोकप्रकृति का लक्षण—जिस कर्म के उदय से शोक या चिंता होती है उसे शोक प्रकृति कहते हैं।

२४—भयप्रकृति का लक्षण—जिस कर्म के उदय में भय ( डर ) या क्रोध होता है उस भयप्रकृति कहते हैं।

२५—जुगुप्सा प्रकृति का लक्षण—जिस कर्म के उदय से दूसर से ग्लानि या घृणा होता है उसे जुगुप्सा प्रकृति कहते हैं।

२६—स्त्रीवेदप्रकृति का लक्षण—जिस कर्म के उदय से पुरुष से रमने की इच्छा होती है उसे स्त्रीवेदप्रकृति कहते हैं।

२७—पुंस्त्ववेदप्रकृति का लक्षण—जिस कर्म के उदय में स्त्री से रमने की इच्छा होती है उसे पुंस्त्ववेदप्रकृति कहते हैं।

२८—नपु सकवेदप्रकृति का लक्षण—जिस कर्म के उदय में स्त्री और पुरुष दोनों से रमने की इच्छा होती है उसे नपु सकवेद प्रकृति कहते हैं।

नोट—३ दशमोहनीय, ६ कपाय और ६ नोकपाय मिला कर मोहनीय कर्म के २८ भेद होते हैं।

## आयुर्म्म की प्रकृतियाँ या भेद—

नरकायु, त्रेयायु, तिर्यगायु और मनुष्यायु ये ४ आयुर्म्म की प्रकृतियाँ या भेद हैं।

१-नरकायु का लक्षण—जिस कर्म के उदय में प्राणी नारकी के शरीर में रुक रहता है उसे नरकायु कहते हैं।

२-त्रेयायु का लक्षण—जिस कर्म के उदय में प्राणी देव के शरीर में रुक रहता है उसे त्रेयायु कहते हैं।

३-तिर्यगायु का लक्षण—जिस कर्म के उदय में प्राणी तिर्यच के शरीर में रुक रहता है उसे तिर्यगायु कहते हैं।

४-मनुष्यायु का लक्षण—जिस कर्म के उदय में प्राणी मनुष्य के शरीर में रुक रहता है मनुष्यायु कहते हैं।

## नामर्म्म की प्रकृतियाँ या भेद—

४ गति, ५ जाति, ५ शरीर, ३ अज्ञोपाज्ञ, १ निर्माण, ५ बन्धन, ५ सवात, ६ सस्वान, ६ महान, ८ स्वर्ग, ५ रस, २ गन्ध, २ वण, ४ आयुपूर्व्य, अगुरलतु, उपघात, परघात, आतप, ज्योत, विहायागति, उच्छ्रयाम, ध्रम, स्थानर, वादुर, मूदम, पयात्रि अपयात्रि, प्रत्येक, साधारण, हिरर, अस्थिर, शुभ,

नरकायु और नरगति नामर्म्म में अन्तर-नरकायुर्म्म का बन्ध होने पर प्राणी का नरक में अवश्य जाना पड़ता है परन्तु नरकगतिकर्म्म का बन्ध हान पर नरकगति में जाना ही पड़े ऐसा नियम नहीं। क्योंकि गतिकर्म्म का बन्ध प्रत्येक समय में होता है परन्तु उसकी निन्तरा हो जानो है। किन्तु जो गतिकर्म्म आयुर्म्म के साथ बन्ध की प्राप्त हाता है वह गतिकर्म्म नियमित रूप से फल देता है।



अशुभ, सुभग, दुभग, सुस्वर, दुस्वर, आदय, अनादेय, यश-कीर्ति, अयश कीर्ति और तीर्थंकर ये ६३ नामरुम की प्रकृतिया या भेद हैं ।

गतिनामरुम का लक्षण या भेद—जिस रुम के उदय से प्राणी दूसरे भव या पयाय को जाता है उसे गतिनामरुम कहते हैं । इसके ४ भेद हैं—तरुगति, देवगति, तिर्यग्गति और मनुष्यगति ।

जातिनामरुम का लक्षण या भेद—जिस नामरुम के उदय से अनक जीवों में अत्रिरोधो समान अरुस्था प्राप्त होती उसे जातिनामरुम कहते हैं । इसके ४ भेद हैं—एरेन्द्रियजाति, द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति और पचेन्द्रियजाति । यदि जाति नामरुम न माना जाय तो जलकायिक और प्रथिवीकायिक जीवों को तथा मनुष्य और स्त्री पयाय धारक जीवा का एक कोटि में नहीं ररु सक्ठ ।

शरीरनामरुम का लक्षण वा भेद—जिस नामरुम के उदय से शरीर धारण करना पड़ता है उसे शरीर नामरुम कहते हैं । शरीर के ५ भेद हैं—औदारिकशरीर, वैक्रियरुशरीर, आहारकशरीर, तेनसशरीर और कामाणशरीर ।

(-औदारिकशरीर का लक्षण—मनुष्य और तिर्यच के इन्द्रियों से दिखने योग्य स्थूल शरीर का औदारिकशरीर कहते हैं ।

वैक्रियरुशरीर का लक्षण—जिस शरीर में स्थूल, सूक्ष्म, हलका, भारी आदि अनेक प्रकार के विकार होने की योग्यता होती है उसे वैक्रियरुशरीर कहते हैं ।

३-आहारकशरीर का लक्षण—छट्टें गुणस्थानवर्ती मुनि के मस्तरु से जो एक हाथ का पुतला निकलता है उसे आहारकशरीर

अगोपाग नामकर्म का लक्षण वा भेद—

जिस कर्म के उद्दय से अंग उपाग का भेद प्रगट होता है उसे अगोपाग नामकर्म कहते हैं। मस्तक, पीठ, हृदय, नितम्ब, ७ हाथ और ७ पैर ये ८ अंग हैं और नाक, अगुली, कान वगैरह उपाग कहलाते हैं। औदारिक अगोपाग, वैत्रियिक अगोपाग और आहारक अगोपाग ये ३ अगोपाग नामकर्म के भेद हैं।

निर्माण नामकर्म का लक्षण वा भेद—

जिस कर्म के उद्दय से अंगों और उपागों का स्थान वा प्रमाण घनता है उसे निर्माण नामकर्म कहते हैं। स्थाननिर्माण और प्रमाणनिमाण ये दो निर्माण नामकर्म के भेद हैं।

१—जिस कर्म के उद्दय से जातिनामकर्म की सहायता द्वारा नाक, कान आदि श्री योग्य स्थान में रचना होती है उसे स्थान निर्माण नामकर्म कहते हैं।

२—जिस कर्म के उद्दय से अँगुली, नाक कान इत्यादि की लम्बाई चौड़ाई आदि का परिमाण यथावत् होता है उसे प्रमाण निर्माण नामकर्म कहते हैं।

कहते हैं। यह शरीर मशय दूर करने, उदना और दीक्षा आदिक कल्याणों के लिये निरलता है।

४ तैजसशरीर का लक्षण—जिस कर्म के उद्दय से शरीर में तेज होता है उसे तैजसशरीर नामकर्म कहते हैं। इसके नि मरण स्वरूप और अनि सरणस्वरूप दो भेद हैं। मय समारियों के पिडला अनि मरणस्वरूप तैजस होता है।

५-कामाणशरीर का लक्षण—ज्ञानावगणात्मिक आठ कर्मों के समूह को कामाणशरीर कहते हैं।

### बन्धन नामकर्म का लक्षण या भेद—

जिस कर्म के उदय से पाचोशरीरा के पुद्गल परस्पर बँधते हैं उसे बन्धननामकर्म कहते हैं। औदारिकबन्धन, वैक्रियिकबन्धन, आहारकबन्धन, तैजसबन्धन और कामाणबन्धन ये ५ बन्धन नामकर्म के भेद हैं।

### सघातनामकर्म का लक्षण—

जिस कर्म के उदय से पाचा शरीरों के परमाणु परस्पर मिलकर छिद्ररहित हो एकता को प्राप्त हो जाते हैं उसे सघात नामकर्म कहते हैं। औदारिकसघात, वैत्रियिकसघात, आहारकसघात, तैजससघात और कामाणसघात ये ५ सघात नामकर्म के भेद हैं।

### सस्थाननामकर्म का लक्षण या भेद—

जिस कर्म के उदय से शरीरों का आकार बनता है उसे सस्थाननामकर्म कहते हैं। समचतुरस्रसस्थान, न्योप्रोधपरिमण्डलसस्थान, स्वातिसस्थान, कुट्टजसस्थान, वामनसस्थान और हुण्डसस्थान ये ६ सस्थाननामकर्म के भेद हैं।

१—जिस कर्म के उदय से शरीर का आकार ऊपर नाचे तथा बीच में समान विभाग से सौंचे में ढला जैसा उत्पन्न होता है उसे समचतुरस्रसस्थान कहते हैं।

२—जिस कर्म के उदय से शरीर का आकार प्रटवृत्त के समान नाभि के नीचे का भाग पतला और ऊपर का भाग मोटा होता है उसे न्योप्रोधपरिमण्डलसस्थान कहते हैं।

३—जिस कर्म के उदय से शरीर का आकार बॉमा के समान ऊपर का भाग पतला और नीचे का भाग मोटा होता है उसे स्वातिसस्थान कहते हैं।

४—जिस कर्म के उदय से घोच के भाग में बहुत से पुद्गलों का समूह होता है अर्थात् पाठ कुत्र उठी रहती है उसे कुत्रक सन्धान कहते हैं।

५—जिम कर्म के उदय से शरीर बौना अर्थात् बहुत छोटा या ठिगना होता है उसे वामनमस्थान कहते हैं।

६—जिस कर्म के उदय से शरीर के अग्र वा उपाग कहीं के कहीं, छोटे या बड़े कर्म या उग्र दह हाते हैं अर्थात् शरीर का आकार बेटौन या ग्यरात्र होता है उसे कुंठकमस्थान कहते हैं।

### सहननामकर्म का लक्षण वा भेद—

जिस कर्म के उदय से हाड वगैरह के बंधन में विशेषता पातो है उसे सहननामकर्म कहते हैं। वज्रवृषभनाराचसहनन, रघुनाराचसहनन, नाराचसहनन, अधनाराचसहनन, कीलक सहनन और असप्राप्तास्रपाटिकासहनन ये ६ सहनन नामकर्म ६ भेद हैं।

१—जिस कर्म के उदय से वृषभ ( नसा के हाडों का बन्धन ) नाराच ( कील ) और सहनन ( हाडा का समूह ) ये ताना वज्र व समान अमेद्य होते हैं उसे वज्रवृषभनाराचसहनन कहते हैं। म सहनन जाला प्राणी नियम में मोक्ष को जाता है।

२—जिस कर्म के उदय से कीलें वा हाड तो वज्रसमाप्त होते हैं परन्तु नमों के जाल वज्रसमाप्त नहीं होते उसे वज्रनाराच सहनन कहते हैं।

दुर्ग, नरक, ऐन्द्रिय, मार्माणशरीर आहारकशरीर वगैरहें गुणस्थानवर्ती और सिद्ध क सहनन नहीं होना।

३—जिस कर्म के उदय से हाड़ तथा सन्धियों में कल्लें तो होती हैं परन्तु वे वज्र के समान कठोर नहीं होती और गसा जान भी वज्र के समान कठोर नहीं होता उसे नाराचमहनन कहते हैं।

४—जिस कर्म के उदय से हाड़ों में एक तरफ कीलें लगी होती हैं तथा दूसरी ओर कीलें नहीं लगी होती उसे अर्धनाराच सहनन कहते हैं।

५—जिस कर्म के उदय से हाड़ पर र कीलित ( कील सहित ) होते हैं उसे कीलकसहनन कहते हैं।

६—जिस कर्म के उदय से हाड़ों का सन्धियों परस्पर कीलित नहीं होती परन्तु नसों, स्नायुओं और मांस में रूंधी रहती हैं उसे असप्रामासृपाटिकासहनन कहते हैं।

स्पर्शनामकर्म का लक्षण और भेद—

जिस कर्म के उदय से शरीर में स्पर्श गुण प्रगट होता है उसे स्पर्शनामकर्म कहते हैं। ककश और मृदु आदि स्पर्श के ८ भेद हैं।

रसनामकर्म का लक्षण और भेद—

जिस कर्म के उदय से शरीर में रस ( स्वाद ) होता है उसे रसनामकर्म कहते हैं। खट्टा और मीठा आदि रस के ५ भेद हैं।

काल और प्राणी की अपेक्षा सहनन का विभाग—

प्रथम द्वितीय अथवा तृतीयकाल में पहिला जाना।

चौथे पट्ट सहनन, पंचम में तीन वस्त्राणो ॥

कर्मभूमि तिस तीन, एक छट्टे के मार्गो।

बिकल चतुष्कै एक एक इन्द्रिय के नार्हो ॥

चचाममाधान से

गन्धनामकर्म के लक्षण और भेद—

जिस कर्म के उदय से शरीर में गन्ध होती है उस गन्ध नामकर्म कहते हैं। सुशब्द और घदब्द ये दो गन्धक भेद हैं।

वर्णनामकर्म का लक्षण और दृष्टांत—

जिस कर्म के उदय से शरीर में वर्ण (रंग) होता है उसे वर्णनामकर्म कहते हैं। कृष्ण, पीत आदि वर्णक ५ भेद हैं।

अनुपूज्यनामकर्म का लक्षण, दृष्टांत और भेद—

जिस कर्म के उदय से अन्य गति का ताते हुए प्राणी के आत्मा का आकार विप्रहगति में पूर्ण शरीर के आकार रहता है उसे आनुपूज्य नामकर्म कहते हैं। जैसे कोई मनुष्य मर कर तिर्यग्गति को खाना हुआ, जब तक वहाँ न पहुँचा तब तक विप्रहगति में मनुष्य पर्याय का आकार बना रहा, उस आकार को तिर्यग्गत्यानुपूर्वी समझना चाहिये। नरगायानुपूर्वी आदि आनुपूर्वी के ४ भेद हैं।

अगुरुलघु नामकर्म का लक्षण—

जिस कर्म के उदय से प्राणी का शरीर भारीपन से लोह पिण्ड के समान नीचे नहीं पड़ जाता है और हल्केपन से रुई के समान ऊपर नहीं उड़ जाता है उस अगुरुलघु नामकर्म कहते हैं।

उपघातनामकर्म का लक्षण—

जिस कर्म के उदय में अपना हाँस या वधन करने वाले अंग (अवयव) होते हैं उस उपघात नामकर्म कहते हैं। जैसे—घारहसिगा के सींग आदि।

+ यहाँ पर शरीर सहित आत्मा के विषय में अगुरुलघु प्रकृति गानी गई है। अन्य द्रव्यों में जो अगुरुलघुत्व होता है वह उनका स्वाभाविक गुण होता है।

## परघातनामकर्म का लक्षण—

जिस कर्म के उदय से पर का घात या बन्धन करने वाले अङ्ग (अयय) होते हैं उसे परघात नामकर्म कहते हैं। जैसे चिन्तू का डक, रीछ की जीभ, शर के नख और घैल व सींग आदि।

## आतपनामकर्म का लक्षण—

जिस कर्म के उदय से पर को आतपकारी शरीर होता है उसे आतप नामकर्म कहते हैं। इस कर्म का उदय सूर्य विमानों के मणिस्वरूप पृथिवीकायिक वादर पयाप्नक जीव के होता है।

## उद्यातनामकर्म का लक्षण—

जिस कर्म के उदय से शरीर में प्रकाश हाता है उसे उद्योत नामकर्म कहते हैं। इस कर्म का उदय चन्द्रविमान व पृथिवीकायिक जीवों के तथा पटबीजा (जुगनु) आदि व होता है।

## विहायोगतिनामकर्म का लक्षण व भेद—

जिस कर्म के उदय से आकाश में गमन हाता है उसे विहायोगति नामकर्म कहते हैं। इसके प्रशस्तविहायोगति और अप्रशस्त विहायोगति ये दो भेद हैं।

१—जिस कर्म के उदय में हस, घाड़ी और गाय की चाल के समान सुन्दर गमन होता है उसे प्रशस्तविहायोगति कहते हैं।

२—जिस कर्म के उदय से उट और गधा की चाल के समान भद्दा गमन होता है उसे अप्रशस्तविहायोगति कहते हैं।

## उड्वासनामकर्म का लक्षण—

जिस कर्म के उदय से शरीर में स्वास चलता है उसे उड्वासनामकर्म कहते हैं।

## प्रत्येकशरीर नामकर्म का लक्षण—

जिस कर्म के उदय से एक शरीर एक ही आत्मा के भोगने योग्य हाता है उसे प्रत्येकशरीर नामकर्म कहते हैं।

साधारणशरीर नामकर्म का लक्षण—

जिस कर्म के उदय से एक शरीर बहुत से जीवों के चार चार भोगने योग्य होता है उसे साधारणशरीर कहते हैं। जैसे मूली, गाजर आलू आदि में निगोदिया जीव का शरीर साधारण होता है।

त्रसनामकर्म का लक्षण—

जिस कर्म के उदय में आत्मा द्वीन्द्रिय आदि में जन्म लेता है उसे त्रसनामकर्म कहते हैं।

स्वारर नामकर्म का लक्षण—

जिस कर्म के उदय से आत्मा पृथिवी और जल आदि पदेन्द्रिया में जन्म लेता है उसे स्वारर नामकर्म कहते हैं।

सुभगनामकर्म का लक्षण—

जिस कर्म के उदय में अपना शरीर देखते हैं दूसरे का अपने पर प्राप्ति हो जाती है उसे सुभगनामकर्म कहते हैं।

दुर्भगनामकर्म का लक्षण—

जिस कर्म के उदय से अपना शरीर रूपादिगुणों में युक्त होने पर भी दूसरो का बुरा मालूम होता है—अप्राप्ति मालूम होती है उसे दुर्भगनामकर्म कहते हैं।

मुस्वर नामकर्म का लक्षण—

जिस कर्म के उदय से सुन्दर स्वर अथवा सबको मीठा लगने वाली आवाज प्राप्त होती है उसे मुस्वरनामकर्म कहते हैं।

---

एक वृत्त में वृत्त भर का स्वामी एक जीव तथा फूल, पत्ते, फल आदि के स्वामी अलग अलग जीव भी हैं।



अथश कीर्तिनामकर्म का लक्षण—

जिस कर्म के उदय से अपने दुर्गुण प्रगट होते हैं उसे अथश कीर्तिनामकर्म कहते हैं।

तीर्थंकरनामकर्म का लक्षण—

जिस कर्म के उदय में पचक-याणक आदि अनुपम विभूति युक्त तीर्थंकर पद की प्राप्ति होती है उसे तीर्थंकरनामकर्म कहते हैं।

### गोत्रकर्म की प्रकृतियाँ या भेद—

१ उच्चगोत्र और २ नीचगोत्र ये दो गोत्रकर्म के भेद या प्रकृतियाँ हैं।

१—जिस कर्म के उदय से प्राणी का लोकमान्य उच्चकुल में जन्म होता है उसे उच्चगोत्र कर्म कहते हैं।

२—जिस कर्म के उदय से प्राणी का लोकनिन्द्य नीचकुल में जन्म होता है उसे नीचगोत्र कर्म कहते हैं।

### अन्तरायकर्म की प्रकृतियाँ या भेद—

दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय ये ५ अन्तरायकर्म के भेद या प्रकृतियाँ हैं।

१—जिस कर्म के उदय से यह जीव दान नहीं दे सकता है उसे दानान्तरायकर्म कहते हैं।

२—जिस कर्म के उदय से प्राणी को लाभ (कायदा या मुनाफा) नहीं हो पाता उसे लाभान्तरायकर्म कहते हैं।

३—जिस कर्म के उदय से भोग करने का इच्छुक भी प्राणी भोग नहीं कर पाता है उसे भोगान्तरायकर्म कहते हैं।

४—जिस कर्म के उदय में उपभोग का इच्छुक भी प्राणी उपभोग नहीं कर पाता है उसे उपभोगान्तरायकर्म कहते हैं।

वीर्यान्तरायन्म का लक्षण—

निम्न म के उदय में शक्ति या सामर्थ्य में हीनता, कायरता या अनुत्साहता होती है उसे वीर्यान्तरायन्म कहते हैं।

प्रश्नावली—

१—अगुरुलघु, अनादेय, अवभिज्ञान, आनुपूर्व्य, आहारकशरीर, कम, नपुंसकप्रेद, नरकगत्यानुपूर्वी, नीचगोत्र, नोरूपाय, प्रचलाप्रचला, मतिज्ञानावरण, मनुष्यायु, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, चायान्तराय सातावेदनीय, साधारण, सहनन और मस्थान आदि की परिभाषा बतलाइये ?

२—अरूपाय, आनुपूर्व्य, कम की उत्तर प्रकृतियों अमुकन्म की मूलप्रकृतिया, सहनन, सस्थान और शरीर के भेद या नाम रहिये ?

३—सब से ज्यादा और सबसे कम प्रकृतियाँ किस कम की होती हैं ?

४—किन किन कर्मा की प्रकृतियों में २ या ३ का

भाग पूरा चला जाता है ?

५—नाम और मोहनीय कर्म की प्रकृतियों के पूरे पूरे नाम गिनाइये ?

६—नामन्म की ऐसी प्रकृतियाँ बतलाइये जो एक दूमर से बलती हैं ?

७—ऐसे जीव बताओ जिनके आनुपूर्वी, कम, पर्याप्ति, रूप, सहनन, सस्थान और शरीर नहीं होत ?

८—देव, नारसी, मनुष्य, स्त्री, तीर्थन्म, वृक्ष, पिन्डू, अग्नि, बट्टर, सिंह, मय, कुण्डा इनके तीन तीन आनुपूर्वी, इन्द्रिय, गति, चाति, पर्याप्ति सहनन, मस्थान और शरीर होते हैं ?

९—नीचकुल में पैदा यश, निद्रा पर निद्रा, कजूसी,

अथश कीर्तिनामकर्म का लक्षण—

जिस कर्म के उदय से अपने दुर्गुण प्रगट होते हैं उसे अथश कीर्तिनामकर्म कहते हैं।

तीर्थकरनामकर्म का लक्षण—

जिस कर्म के उदय से पचकल्याणक आदि अनुपम विभूति युक्त तीर्थकर पद की प्राप्ति होती है उसे तीर्थकरनामकर्म कहते हैं।

### गोत्रकर्म की प्रकृतियाँ या भेद—

१ उच्चगोत्र और २ नीचगोत्र ये दो गोत्रकर्म के भेद या प्रकृतियाँ हैं।

१—जिस कर्म के उदय से प्राणी का लोकमान्य उच्चकुल में जन्म होता है उसे उच्चगोत्र कर्म कहते हैं।

२—जिस कर्म के उदय से प्राणी का लोकनिन्य नीचकुल में जन्म होता है उसे नीचगोत्र कर्म कहते हैं।

### अन्तरायकर्म की प्रकृतियाँ या भेद—

दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय ये ५ अन्तरायकर्म के भेद या प्रकृतियाँ हैं।

१—जिस कर्म के उदय से यह तीव्र दान नहीं दे सकता है उसे दानान्तरायकर्म कहते हैं।

२—जिस कर्म के उदय से प्राणी को लाभ ( फायदा या मुनाफा ) नहीं हो पाता उस लाभान्तरायकर्म कहते हैं।

३—जिस कर्म के उदय से भोग करने का इच्छुक भी प्राणी भोग नहीं कर पाता है उसे भोगान्तरायकर्म कहते हैं।

४—जिस कर्म के उदय से उपभोग का इच्छुक भी प्राणी उपभोग नहीं कर पाता है उसे उपभोगान्तरायकर्म कहते हैं।

वीर्यान्तरायन्म का लक्षण—

निम्न कम के उदय में शक्ति या सामर्थ्य में हीनता, कायरता या अनुत्साहता होती है उसे वीर्यान्तरायन्म कहते हैं।

प्रश्नावली—

१—अगुरुलघु, अनाप्येय, अवभिज्ञान, आनुपूर्व्य, आहारकशरार, कम, नपुंसकप्रेद, नरकगत्यानुपूर्वी, नीच शोत्र, नोनपाय, प्रचलाप्रचला, मतिज्ञानावरण, मनुष्यायु, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, वीर्यान्तरायन्म माताप्रेदनीय, साधारण, सहनन और मस्थान आदि की परिभाषा बतलाइये ?

२—अकषाय, आनुपूर्व्य, कम की उत्तर प्रकृतियों अमुन्म की मूलप्रकृतियों, सहनन, सस्थान और शरीर के भेद या नाम कहिये ?

३—सत्र में ज्यादह और सबसे कम प्रकृतियों किम कम की होती हैं ?

४—किन किन कमा की प्रकृतियों में २ या ३ का

भाग पूरा चला जाता है ?

५—नाम और मोहनीय र्म का प्रकृतियों के पूरे पूरे नाम गिनाइये ?

६—नामन्म का ऐसी प्रकृतियाँ बतलाइये जो एक दूसरे में उलटी हैं ?

७—ऐसे जीव बताओ जिनके आनुपूर्वी, कम, पर्याप्ति, रूप, सहनन, सस्थान और शरीर नहीं होते ?

८—देव, नारकी, मनुष्य, स्त्री, तीर्थंकर, पृक्ष, चिन्दू, अग्नि, बन्दर, सिंह, सप, कुण्डा इनके कौन कौन आनुपूर्वी, इन्द्रिय, गति, जाति, पर्याप्ति सहनन, सस्थान और शरीर होते हैं ?

९—नीचकुल में वेदाग्रश, तिरा पर निद्रा, कजूमी,

अथश कीर्तिनामकर्म का लक्षण—

जिस कर्म के उदय से अपने दुर्गुण प्रगट होते हैं उसे अथश कीर्तिनामकर्म कहते हैं।

तीर्थकरनामकर्म का लक्षण—

जिस कर्म के उदय से पंचकल्याणक आदि अनुपम विभूति युक्त तीर्थकर पद की प्राप्ति होती है उसे तीर्थकरनामकर्म कहते हैं।

**गोत्रकर्म की प्रकृतियाँ या भेद—**

१ उच्चगोत्र और २ नीचगोत्र ये दो गोत्रकर्म के भेद या प्रकृतियाँ हैं।

१—जिस कर्म के उदय से प्राणी का लोकमान्य उच्चकुल में जन्म होता है उसे उच्चगोत्र कर्म कहते हैं।

२—जिस कर्म के उदय से प्राणी का लोकनिन्द्य नीचकुल में जन्म होता है उसे नीचगोत्र कर्म कहते हैं।

**अन्तरायकर्म की प्रकृतियाँ या भेद—**

दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय ये ५ अन्तरायकर्म के भेद या प्रकृतियाँ हैं।

१—जिस कर्म के उदय से यह जीव दान नहीं दे सकता है उसे दानान्तरायकर्म कहते हैं।

२—जिस कर्म के उदय से प्राणी को लाभ ( फायदा या सुनाफा ) नहीं हो पाता उसे लाभान्तरायकर्म कहते हैं।

३—जिस कर्म के उदय से भोग करने का इच्छुक भी प्राणी भोग नहीं कर पाता है उसे भोगान्तरायकर्म कहते हैं।

४—जिस कर्म के उदय से उपभोग का इच्छुक भी प्राणी उपभोग नहीं कर पाता है उसे उपभोगान्तरायकर्म कहते हैं।

वीर्यान्तरायुग्म का लक्षण—

निम्न कर्म के उदय में शक्ति या सामर्थ्य में हीनता, कायरता या अनुत्साहता होती है उसे वीर्यान्तरायुग्म कहते हैं।

प्रश्नावली—

१—अगुणलघु, अनादेय, अरुभिज्ञान, आनुपूर्व्य, आहारकशरीर, कर्म, नपुंसक उद, नरकगत्यानुपूर्वी, नीच गौत्र, नोकपाय, प्रचलाप्रचला, मतिज्ञानावरण, मनुष्यायु, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, वायान्तराय सातावेदनीय, साधारण, सहनन और मस्थान आदि का परिभाषा बतलाइये ?

२—अकपाय, आनुपूर्व्य, कर्म की उत्तर प्रकृतियों अमुककर्म को मूलप्रकृतियों, सहनन, संस्थान और शरीर के भेद या नाम कहिये ?

३—सब से ज्यादा और सबसे कम प्रकृतियों किस कर्म को हाती हैं ?

४—किन किन कर्मों की प्रकृतियों में २ या ३ का

भाग पूरा चला जाता है ?

५—नाम और मोहनीय कर्मों की प्रकृतियों के पूरे पूरे नाम गिनाइये ?

६—नामकर्म की ऐसी प्रकृतियों बतलाइये जो एक दूसरे में उलटी हैं ?

७—ऐसे जीव बनाओ विनम्र आनुपूर्वी, कर्म, पर्याप्ति, रूप, सहनन, संस्थान और शरीर नहीं होते ?

८—देव, नारकी, मनुष्य, स्त्री, ताथकर, वृत्त, विद्ध, अग्नि, बदर, सिंह, सर्प, बुबड़ा इनके कौन कौन आनुपूर्वी, ईद्रिय, गति, जाति, पवानि सहनन, संस्थान और शरीर होते हैं ?

९—नाचकुल में पैदा बश, निद्रा पर निद्रा, कंजूमी,

घृणा, बीमारी, अगोपाग का ठीक ठीक रचना, आकाशगमन, अन्धापन, बहि रापन, लूलापन, लम्बी नाक, छोटी आँसू, ठिगगा शरीर, अपन या दूसर पर प्यार, हसा, अन्धा गनैयापन, बदनामी और अतिशयोक्ति प्राप्ति किस किस कर्मप्रकृति के उदय से होती है ?

१०—हमारी प्रशंसा क्या नहीं होती ? सम्यग्दर्शन सब तरफ नहीं होता ? हमको याद क्यों नहीं होता ? हम हर जगह क्या नहीं जा सकते ? हम तीर्थंकर क्या नहीं होत ? हम मुनि या भाग्य क्यों नहीं हो पाते ? हम काले क्या हैं ? देव अपना शरीर छोटा बड़ा कैम कर लेते हैं ?

११—अयश क्रांति, जु गुप्ता, तोमर, दनायु मिथ्यात्व, शुभ, रत्यानगृद्धि, शुभ और हुँडक प्रकृति के उदय से क्या क्या होता है ?

१२—अगुरुलघुत्वगुण और अगुरुलघुप्रकृति म, रति और सुभग में, सम्यग्दर्शन और सम्यग्प्रकृति में, साधारण और सूक्ष्म में, संज्ञन और सम्यान में, शुभ और सुभग म क्या अंतर है ?

१३—ध्रुतदर्शन और मनपयदर्शन क्या नहीं हाता ?

१४—मिथ्यादृष्टि देव के, घोडा होने वाले मनुष्य के और इन्हों होने वाले मुनि के कौन कौन आनुपूर्वी होगी ?

# पाठ ग्यारहवां

## अन्तर-प्रदर्शन



१—द्रव्यपूजा वा भावपूजा में अन्तर—

द्रव्यपूजा में तो अष्टद्रव्य चढ़ाये जाते हैं किन्तु भावपूजा में केवल गुणगान किया जाता है यही इन दोनों में अन्तर है।

२—मूलगुण वा उत्तरगुणों में अन्तर—

मूलगुण तो असाधारण खास खास गुणों को कहते हैं किन्तु उत्तरगुण साधारण गुणों को कहते हैं। ×

३—अरिहन्त वा सिद्ध में अन्तर—

अरिहन्त के तो चार धानिया-कर्मों का ही नाश होता है किन्तु सिद्ध के आठ कर्मों का नाश हो जाता है।

४—अतुल्यबल वा अनन्तबल में अन्तर—

अतुल्यबल का कथन तो शरीरसम्यन्धी बल की अपेक्षा है किन्तु अनन्तबल का कथन अतरायकर्म के नाश से उत्पन्न आत्मबल की अपेक्षा है। यही इन दोनों में अन्तर है।

५—आचार्य उपाध्याय वा साधु में अन्तर—

आचार्य शिक्षा और दण्ड देते हैं, उपाध्याय पढ़ाते और पढ़ते हैं तथा साधु केवल आत्मचिन्तन करते हैं।

६—व्यसन वा पाप में अन्तर—

पाप तो कभी कभी और भूल चूक वगैरह क्रोध आदि के बश होकर किये जाते हैं किन्तु व्यसन आसक्ति और प्रेम बश मेव किये जाते हैं। यही इन दोनों में अन्तर है।

---

× "यही इन दोनों में अन्तर है" यह वाक्य हर एक वाक्य के अंत में लगा लेना चाहिए।



पर स्त्री और वेश्या में अन्तर—

७-गरस्त्री के तो एक ही निश्चित स्वामी (पति) होता है किन्तु वेश्या के अनेक स्वामी होते हैं, जिसने पैसा दिया उसी को स्वामी बना लेती है। यही इन दोनों में अन्तर है।

८-अनिष्ट वा अनुपसेव्य में अन्तर—

अनिष्ट तो किसी रोगी आदि के लिये ही अभक्ष्य होता है किन्तु अनुपसेव्य सभी के लिये अभक्ष्य होता है।

९-अराग्राह्य वा महाग्रह्य में अन्तर—

अराग्राह्य में तो पाँच पापों का एकदेश त्याग किया जाता है किन्तु महाग्रह्यों में पाँचों पापों का सर्वदेश त्याग किया जाता है यही इन दोनों में अन्तर है।

१०-दिग्ग्रह्य वा देशग्रह्य में अन्तर—

दिग्ग्रह्य की मर्यादा तो जीवनपर्यन्त के लिये होती है किन्तु देशग्रह्य की घड़ी, घँटा आदि नियमितकाल के लिये।

११-दिग्ग्रह्य और अनर्थदण्डग्रह्य में अन्तर—

दिग्ग्रह्य में तो मर्यादा के बाहर ही पापों का त्याग होता है किन्तु अनर्थदण्डग्रह्य में मर्यादा के भीतर भी त्याग किया जाता है।

१२-प्रोषध, उपवास और प्रोषधोपवास में अन्तर—

प्रोषध में तो आरम्भ और विषयकषाय आदि का त्याग करते हुए एकवार भोजन किया जाता है, किन्तु उपवास भोजन का सर्वथा त्याग रहता है और प्रोषधोपवास में पच दिन आरम्भ, विषयकषाय तथा आहार को त्याग कर धारण और पारणा के दिन भी एकासन किया जाता है।

१३-भोगोपभोगपरिमाण वा परिग्रहपरिमाणग्रह्य में अन्तर—

परिग्रहपरिमाणाग्राह्य में जिस परिग्रह का परिमाण किया जाता है भोगोपभोगपरिमाणग्रह्य में उसमें भी कभी कभी कमी आती है।

१४-भोग वा उपभोग में अन्तर—

भोग तो एक ही धार भोगने योग्य होता है किन्तु उपभोग बार बार भोगने में आता है। यही इन दोनों में अन्तर है।

१५-यम और नियम में अन्तर—

यम में तो जीवनपयत्त के लिये भोगोपभोग का त्याग किया जाता है किन्तु नियम में घड़ी, घण्टा आदि परिमित काल के लिये भोगोपभोग का त्याग किया जाता है।

१६-अतिचार और अनाचार में अन्तर—

अतिचार में तो घृत का अंश भंग होता है, जो औरों के दृष्टि-गोचर नहीं होता, किन्तु अनाचार में घृत का पूर्ण रूप से ही भंग हो जाता है, जो औरों के दृष्टिगोचर तक होने लगता है। यही इन दोनों में अन्तर है।

१७-श्रावकप्रतिमा और जिनप्रतिमा में अन्तर—

श्रावक की प्रतिमाओं में तो प्रतिमाशब्द से श्रावक के कर्त्तव्यों को कक्षा या श्रेणी से तात्पर्य है किन्तु जिनप्रतिमा में भगवान की मूर्ति से तात्पर्य है। यही इन दोनों में अन्तर है।

१८-सामायिकशिक्षाघृत वा सामायिकप्रतिमा में अन्तर—

सामायिकशिक्षाघृत में तो सामायिक के अतिचार कदाचित् लग सकते हैं किन्तु सामायिकप्रतिमा में अतिचार भी सवथा हटाने पड़ते हैं। यही इन दोनों में अन्तर है।

१९-प्रोषधघृत वा प्रोषधप्रतिमा में अन्तर—

प्रोषधोपवास शिक्षाघृत में तो कभी अतिचार भी लग सकते हैं परन्तु प्रोषधप्रतिमा में अतिचार भी दूर करने पड़ते हैं।

२०-सचित्त और अचित्त में अन्तर—

सचित्त में तो जीव या अंकुर पैदा होने की शक्ति रहती है किन्तु अचित्त में ये दोनों बातें नहीं रहती।

२१-ब्रह्मचर्याणुव्रत वा ब्रह्मचर्यप्रतिमा में अन्तर—

ब्रह्मचर्याणुव्रत में तो अपनी स्त्री के साथ विषयसेवन का त्याग नहीं होता परन्तु ब्रह्मचर्यप्रतिमा में अपनी और पराई दोनों प्रकार की स्त्रियों का त्याग होना है। यही इन दोनों में अन्तर है।

२२-ब्रह्मचर्यमहाव्रत वा ब्रह्मचर्यप्रतिमा में अन्तर—

यद्यपि इन दोनों में ही स्त्रीमात्र का त्याग हो जाता है तथापि ब्रह्मचर्यप्रतिमा में ब्रह्मचर्यमहाव्रत जैसी विशुद्धता नहीं होती। ब्रह्मचर्यप्रतिमाधारी को बस्त्र छोड़ने में लज्जा आती है परन्तु ब्रह्मचर्य महाव्रत का धारी नग्न रहता हुआ भी लज्जित नहीं होता। यही इन दोनों में अन्तर है।

२३-परिमहपरिमाणव्रत वा परिमहत्यागप्रतिमा में अन्तर—

परिमहपरिमाणव्रत में तो गृहस्थी के काम आने वाली दशप्रकार के परिमह का वस्तुएँ अपने पास रखी जाती हैं किन्तु परिमहत्यागप्रतिमा में धर्मसाधन के उपकरणों को छोड़ कर दश प्रकार के परिमहों का सर्वथा त्याग करना पड़ता है।

२४-छुल्लक वा गेलक में अन्तर—

छुल्लक तो चादर वा पात्र रखते हैं और बाल कटवाते या पनवाते हैं किन्तु गेलक चादर वा पात्र नहीं रखते और केश लोंच करते हैं। यही इन दोनों में अन्तर है।

२५-धर्मभावना और धर्म में अन्तर—

धर्मभावना में तो कर्त्तव्यपालन का बार बार विचार माना किया जाता है किन्तु धर्म में कर्त्तव्य पालन किया जाता है।

२६-एकत्व वा अन्यत्वभावना में अन्तर—

एकत्वभावना में अकेलेपन का और अन्यत्वभावना में भिन्नपने का विचार किया जाता है।

२७-प्राण वा पर्याप्ति में अन्तर—

प्राण तो एक पर्याय में प्राप्त होकर उस पर्याय भर अटल होते हैं किन्तु पर्याप्तियों में एक पर्याय में अनेकवार परिवर्तन होता रहता है।

२८-द्रव्यप्राण वा भावप्राण में अन्तर—

द्रव्यप्राणों का तो परिवर्तन और नाश भी हो जाता है किन्तु भावप्राणों का परिवर्तन और नाश नहीं होता।

२९-आस्रव वा बन्ध में अन्तर—

प्रथमक्षण में जो कर्मस्पर्शों का आगमन होता है वह तो आस्रव कहलाता है और द्वितीय आदि क्षण में उनका आत्मा में मिश्रित हो जाना बन्ध कहलाता है।

३०-आस्रव वा संवर में अन्तर—

आस्रव में तो कर्म आते हैं किन्तु संवर में रुकते हैं।

३१-निर्जरा वा मोक्ष में अन्तर—

निर्जरा में तो कर्म कुछ ही नष्ट होते हैं किन्तु मोक्ष में कर्मात् सर्वथा नाश हो जाता है।

३२-संस्थान और सङ्गन में अन्तर—

संस्थान के निमित्त से तो शरीर का आकार बनता है किन्तु सङ्गन के निमित्त से हाडों के घघना में विशेषता होती है।

३३-साधारण वा प्रत्येक में अन्तर—

साधारण के आश्रित तो अनेक प्राणी रहते हैं किन्तु प्रत्येक के आश्रित एक ही प्राणी रहता है।

३४-रति और सुभग में अन्तर—

रति में तो अपना दूसरों पर प्रेम होता है किन्तु सुभग में दूसरों का अपने पर प्रेम होता है।

॥ मन्थसमाप्ति ॥